ईश्वरी खेतान शुगर मिल्स (प्राइवेट) लिमिटेड

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

[Ishwari Khetan Sugar Mills (Private) Limited

v.

The State of Uttar Pradesh and Others]

तथा

मैसर्स आर० बी० लछमन दास शुगर एण्ड जनरल मिल्स प्राइवेट लिमिटेड

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

(M/s. R. B. Lachman Das Sugar and General Mills Private Ltd.

v.

State of Uttar Pradesh and Others)

(2 अप्रैल, 1980)

(न्यायाधिपति वी० आर० कृष्ण अय्यर, एस० मुर्तजा फजल अली, डी० ए० देसाई, आर० एस० पाठक तथा ए० डी० कोशल)

संविधान, 1950—सप्तम अनुसूची—सूची 1 की प्रविष्टि 7 और 52, सूची 2 की प्रविष्टि 24 तथा सूची 3 की प्रविष्टि 42—विधायन के शीर्ष के रूप में "उद्योग" सूची 2 की प्रविष्टि 24 में ही आता है इसलिए उसकी बाबत विधान बनाने की विधानमण्डल को अनन्य शक्ति प्राप्त है—किन्तु प्रविष्टि 24 के सूची 1 की प्रविष्टि 7 और 52 के अध्यधीन होने के कारण किसी उद्योग की बाबत उस दशा में राज्य विधानमण्डल को विधान बनाने की शक्ति नहीं रह जाती है जबकि संसद् विधि द्वारा घोषणा करके उस उद्योग का नियन्त्रण अपने हाथ में ले ले—राज्य विधानमण्डल को किसी घोषित उद्योग की बाबत विधान बनाने की शक्ति से उसी विस्तार तक

वंचित किया जा सकता है जो कि संसद् द्वारा सम्बद्ध अधिनियम में की गई घोषणा में वर्णित हो—सूची 3 की प्रविष्टि 42 के अधीन सम्पत्ति के अर्जन की शक्ति एक पूर्णतया स्वतन्त्र शक्ति है।

यू०पी० शुगर अंडरटेकिंग्ज (एक्विजीशन) ऐक्ट, 1971 (1971 का 23)—[सपठित उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1951 (1951 का 65), धारा 20]—यू० पी० ऐक्ट तत्वतः और सारतः अनुसूचित उपक्रमों को अर्जित करने के लिए ही अधिनियमित किया गया था—यू० पी० ऐक्ट तथा उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम के उपबन्धों के बीच कोई विरोध नहीं है—यू० पी० ऐक्ट केन्द्रीय अधिनियम के क्षेत्र में अधिक्रमण नहीं करता है—इससे केन्द्रीय अधिनियम की धारा 20 का उल्लंघन नहीं होता है—राज्य विधान-मण्डल यू० पी० शुगर अंडरटेकिंग्ज (एक्विजीशन) ऐक्ट अधिनियमित करने के लिए विधायी रूप से सक्षम था।

यू० पी० शुगर अंडरटेकिंग्ज (एक्विजीशन) ऐक्ट, 1971 (1971 का 23) [सपठित संविधान, 1950, अनुच्छेद 31 (2)]—इस अधिनियम की अनुसूची में प्रतिकर सुसंगत सिद्धान्तों के अनुसार निर्धारित किया गया है इसलिए इससे संविधान के अनुच्छेद 31(2) का अतिक्रमण नहीं होता है।

यू० पी० शुगर अंडरटेकिंग्ज (एक्विजीशन) ऐक्ट, 1971 (1971 का 23) (सपठित संविधान, 1950, अनुच्छेद 14)—इस अधिनियम द्वारा जिस विभेद के आधार पर अर्जन के लिए उपक्रमों को चुना गया है उसका अधिनियम द्वारा प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य से तर्कसंगत सम्बन्ध है—अतः इस अधिनियम को इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती कि इससे संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण होता है।

उत्तर प्रदेश राज्य में कुछ चीनी मिलों के स्वामियों द्वारा गन्ना उत्पादकों और चीनी मिलों में नियोजित श्रमिकों के लिए उत्पन्न की गई गम्भीर समस्याओं के परिणामस्वरूप उत्तर प्रदेश के राज्यपाल ने यू० पी० शुगर अंडरटेकिंग्ज (एक्विजीशन) आर्डिनेंस, 1971 उस अध्यादेश की अनुसूची में उपवर्णित चीनी उपक्रमों को यू० पी० स्टेट शुगर कारपोरेशन लिमिटेड को अन्तरित करने और उसमें निहित करने के लिए प्रख्यापित किया था। यू० पी० शुगर अंडरटेकिंग्ज (एक्विजीशन) ऐक्ट, 1971 द्वारा अध्यादेश

निरसित कर दिया गया था और उसके स्थान पर उक्त अधिनियम प्रतिस्थापित कर दिया गया था। अधिनियम की अनुसूची में 12 चीनी उपक्रम प्रगणित किए गए थे और धारा 3 के प्रवर्तन द्वारा ये अनुसूचित उपक्रम नियत दिन से निगम को अन्तरित कर दिए गए थे और उसमें निहित हो गए थे। पिटीशनरों ने उच्च न्यायालय के समक्ष अधिनियम की सांविधानिक विधिमान्यता को इन आधारों पर चुनौती दी कि राज्य विधानमण्डल उन्हें अधिनियमित करने के लिए विधायी रूप से सक्षम नहीं था, अधिनियम से संविधान के अनुच्छेद 31 का अतिक्रमण होता था क्योंकि वह अर्जन लोक प्रयोजन के लिए नहीं था और उस अधिनियम में प्रतिस्थापित प्रतिकर काल्पनिक था, अधिनियम से संविधान के अनुच्छेद 19(1)(च) और (छ) का भंग होता था तथा अधिनियम द्वारा संविधान के अनुच्छेद 14 में समाविष्ट समता की गारंटी का अतिलंघन होता था। उच्च न्यायालय की खण्ड न्यायपीठ ने एक सामान्य निर्णय द्वारा पिटीशनरों की ओर से दी गई दलीलों का खण्डन कर दिया और अधिनियम की सांविधानिक विधिमान्यता की पुष्टि कर दी। उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपीलें तथा विशेष इजाज़त पिटीशन फाइल किए गए। अपीलें तथा विशेष इजाज़त पिटीशन खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित—"उद्योग" विधायन के एक शीर्ष के रूप में संविधान की सप्तम अनुसूची की सूची 2 की प्रविष्टि 24 में इस परिसीमा के साथ देखा जा सकता है कि यह सूची 1 की प्रविष्टि 7 और 52 के उपबन्धों के अध्यधीन है। प्रविष्टि 7 और 52 की भाषा के बीच अन्तर का प्रविष्टि 52 के निर्वचन से सम्बन्ध है। पूर्वकथित मामले में यदि संसद् यह घोषणा कर देती है कि कोई विशिष्ट उद्योग प्रतिरक्षा के प्रयोजन के लिए अथवा युद्ध चलाने के लिए आवश्यक है तो संसद् राज्य विधानमण्डलों को अपवर्जित करते हुए उस उद्योग की बाबत विधान बनाने के लिए अनन्यत: हकदार होगी क्योंकि अपेक्षित घोषणा का प्रभाव उस उद्योग को सूची 2 की प्रविष्टि 24 से बाहर कर देने का होगा। संसद् द्वारा विधि द्वारा किसी विशिष्ट उद्योग का नियंत्रण लोक हित में ग्रहण करने के लिए घोषणा सूची 1 की प्रविष्टि 52 के अधीन उस उद्योग की बाबत विधान बनाने की संसद् को शक्ति प्रदान करने के लिए अनिवार्य है क्योंकि अन्यथा विधान के सामान्य शीर्ष के तौर पर उद्योग सूची 2 की प्रविष्टि 24 के अनुसरण में राज्य के विधायी क्रियाकलापों के अनन्य क्षेत्र के भीतर आता है। भाग 11 और अनुच्छेद 246 में यथा अधिनियमित विधायी शक्तियों का वितरण संसद् के लिए और राज्य विधानमण्डलों के लिए तथा समवर्ती सूची के लिए, जिसकी बाबत भाग 11 के

अन्य उपबन्धों के अधीन रहते हुए दोनों ही विधान बना सकते हैं, विधायी क्रियाकलापों के क्षेत्र के बीच स्पष्ट रूप से विभाजन रेखा खींचता है। अनुच्छेद 246 के उप-अनुच्छेद (3) में यह उपबन्ध किया गया है कि सप्तम अनुसूची की सूची 2 में प्रगणित किन्हीं भी विषयों की बाबत राज्य विधान-मण्डल को विधियां बनाने की अनन्य शक्ति प्राप्त है। और भी प्रबल रूप से, उद्योग के सूची 2 में प्रगणित विषय होने के कारण, उसकी बाबत विधान बनाने की राज्य विधानमण्डल को अनन्य शक्ति प्राप्त है और थोड़ी देर के लिए "सूची 1 की प्रविष्टि 7 और 52 के उपबन्धों के अधीन रहते हुए" शब्दों को हटा देने पर केवल राज्य विधानमण्डल ही "उद्योग" विधायन शीर्ष की बाबत विधान बना सकता है। तथ्यतः संसद् को विधायी शीर्ष के तौर पर उद्योग की बाबत विधान बनाने की कोई शक्ति प्राप्त नहीं हो सकती थी। सूची 1 की प्रविष्टि 52 संसद् को तब तक विधायी क्रियाकलापों का कोई क्षेत्र प्रदान नहीं करती है जब तक कि संसद् विनिर्दिष्ट उद्योगों का नियंत्रण ग्रहण करने की विधि द्वारा घोषणा न कर दे। (पैरा 7)

उस उद्योग की बाबत जो कि सूची 2 में आता है, विधान बनाने की संसद् की शक्ति पर लगाया गया प्रतिबंध सूची 1 की प्रविष्टि 52 में यथा अनुध्यात रूप से संसद् द्वारा विधि द्वारा घोषणा कर दिए जाने पर समाप्त हो जाएगा। सूची 1 की प्रविष्टि 52 द्वारा यथा अनुध्यात घोषणा के अभाव में, इस बारे में कोई विवाद नहीं है कि संसद् को उद्योग विषय पर कोई विधान बनाने की शक्ति प्राप्त नहीं है। सूची 1 की प्रविष्टि 52 की भाषा विनिर्दिष्ट उद्योगों पर नियंत्रण ग्रहण करने के लिए मात्र घोषणा ही अनुध्यात नहीं करती है अपितु इस बारे में घोषणा की जाती है कि विनिर्दिष्ट उद्योगों का नियंत्रण लोक हित में विधि द्वारा ग्रहण किया जाएगा। घोषणा द्वारा अर्जित विधान बनाने की शक्ति के अनुसरण में अधिनियमित विधान उद्योग पर नियंत्रण ग्रहण करने के लिए होना चाहिए और उस अधिनियमित विधि द्वारा ही घोषणा की जानी होगी जिसका कि वह घोषणा एक अभिन्न अंग होगी। घोषणा को अन्तर्विष्ट करते हुए नियंत्रण ग्रहण करने के लिए बनाए गए विधान में घोषणा द्वारा इस प्रकार ग्रहण किए गए नियंत्रण की परिसीमा वर्णित होगी। अतः घोषणा के अनुसरण में संसद द्वारा अर्जित किए जाने वाले नियंत्रण की मात्रा और सीमा ग्रहण किए गए नियंत्रण की मात्रा उपवर्णित करते हुए अधिनियमित विधान पर ही अनिवार्यतः निर्भर करेगी। विधि के बिना घोषणा मात्र सूची 1 की प्रविष्टि 52 से असंगत होगी। सूची 1 की प्रविष्टि 52 के अधीन विधायी कारंवाई करने के लिए, विनिर्दिष्ट उद्योगों का

नियंत्रण अपने हाथ में लेने के लिए की गई घोषणा के साथ नियंत्रण हाथ में लेते हुए बनाई गई विधि एक पूर्वापेक्षा है। घोषणा और घोषणा के अनुसरण में बनाया गया विधान उस सीमा तक सूची 2 की प्रविष्टि 24 के अधीन राज्य विधानमण्डल की विधान बनाने की शक्ति समाप्त कर देता है। अतः घोषित उद्योग की बाबत विधान बनाने की राज्य विधानमण्डल की शक्ति केवल घोषणा के कारण ही समाप्त नहीं हो जाएगी अपितु घोषणा के परिणामस्वरूप बनाई गई उस अधिनियमिति द्वारा समाप्त होगी जिसमें नियंत्रण का क्षेत्र और विस्तार विहित किया गया होगा। जब सूची 1 की प्रविष्टि 52 द्वारा यथा अनुध्यात किसी विशिष्ट उद्योग की बाबत कोई घोषणा की जाती है तब यह दलील दी जाती है कि विधान के विषय के तौर पर "उद्योग" राज्य के विधायी क्षेत्र से हटा दिया जाएगा। अतः यह स्पष्ट है कि संघ उस दशा में किसी उद्योग की बाबत नियंत्रण ग्रहण करने के लिए प्राधिकृत है जब कि संसद विधि द्वारा ऐसा करना लोक हित में समीचीन समझे। घोषणा संसद द्वारा की जानी है किन्तु वह घोषणा विधि द्वारा की जानी है न कि मात्र "घोषणा" की जानी है। घोषणा करने की शक्ति पर परिसीमा विषयक शब्द "विधि द्वारा" है। वह घोषणा उस घोषणा के अनुसरण में अधिनियमित विधि का अभिन्न अंग होनी चाहिए। (पैरा 7, 11)

यह कहना ठीक नहीं है कि किसी उद्योग की बाबत एक बार घोषणा कर दिए जाने पर वह उद्योग सूची 2 की प्रविष्टि 24 से पूर्ण रूप से निकल जाता है। किसी घोषित उद्योग की बाबत सूची 2 की प्रविष्टि 24 के अधीन विधान बनाने की शक्ति से राज्य विधानमण्डल को वंचित करने के पूर्व उस घोषणा का विस्तार और उसके परिणामस्वरूप संघ द्वारा नियंत्रण ग्रहण किए जाने के बीच ठीक-ठीक विभाजन रेखा खींची जानी चाहिए और तब यह अभिनिश्चित किया जाना चाहिए कि क्या आक्षेपकृत विधान अपवादित क्षेत्र में अतिक्रमण करता है। राज्य विधानमण्डल को प्रविष्टि 24 के अधीन की विधायी शक्ति से उसी विस्तार तक वंचित किया जा सकता है जिस तक कि संसद प्रविष्टि 52 के अधीन घोषणा कर देती है और ऐसी घोषणा द्वारा संसद केवल उन्हीं उद्योगों की बाबत विधान बनाने की शक्ति अर्जित कर लेती है जिनकी बाबत घोषणा की गई है और यह शक्ति केवल उसी विस्तार तक होती है जो कि घोषणा को अन्तर्विष्ट करने वाले विधान में उल्लिखित किया गया हो न कि उससे अधिक। अधिनियम में नियंत्रण का विस्तार विहित किया गया है और विनिर्दिष्ट किया गया है। चूंकि घोषणा राज्य की विधायी शक्ति में हस्तक्षेप करती है इसलिए इसका अर्थान्वयन कठोरता से किया जाना

होता है। संघ ने समय-समय पर यथा संशोधित उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम की धारा 2 में घोषणा के आधार पर जिस विस्तार तक नियंत्रण ग्रहण किया है, वहां तक सूची 2 की प्रविष्टि 24 के अधीन घोषित उद्योग की बाबत उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम के नियंत्रण के क्षेत्र में अधिक्रमण करते हुए कोई विधान बनाने की राज्य विधान-मण्डल की शक्ति छीन ली जाएगी। (पैरा 8, 11)

सम्पत्ति के अर्जन और अधिग्रहण की शक्ति एक स्वतंत्र शक्ति है जिसका एक विनिर्दिष्ट प्रविष्टि में उपबन्ध किया गया है। अतः संघ तथा राज्य दोनों को ही सम्पत्ति के अर्जन और अधिग्रहण की शक्ति प्राप्त होगी। यह दलील कि यदि सूची 3 की प्रविष्टि 42 में अर्जन या उद्ग्रहण की शक्ति को ऐसी स्वतंत्र शक्ति माना गया जो सूची 1 प्रविष्टि 52 द्वारा अनुध्यात घोषणा के अनुसरण में संघ द्वारा ग्रहण किए गए नियंत्रण से पूर्णतया बाहर होती है तो इससे किसी प्रकार का कोई सांविधानिक गतिरोध उत्पन्न हो जाएगा, वास्तविक के बजाय काल्पनिक है। सम्पत्ति के अर्जन के लिए विधान बनाने की शक्ति एक स्वतंत्र और पृथक् शक्ति है और उसका प्रयोग केवल सूची 3 की प्रविष्टि 42 के अधीन ही किया जा सकता है न कि तीनों सूचियों की किसी अन्य प्रविष्टि में विधान के किसी विनिर्दिष्ट शीर्ष की बाबत विधान बनाने की शक्ति की आनुषंगिक शक्ति के रूप में। सम्पत्ति के अर्जन के लिए विधान बनाने की राज्य विधानमण्डल की यह शक्ति उस विस्तार तक के सिवाय अप्रभावित और अनियंत्रित बनी रहती है जिस तक कि सूची 1 की प्रविष्टि 52 में यथा अनुध्यात घोषणा द्वारा किसी उद्योग का नियंत्रण ले लिया जाता है तथा अर्जन की अतिरिक्त शक्ति विनिर्दिष्ट विधान द्वारा ले ली जाती है। (पैरा 18, 20, 25)

इस मामले में कतिपय उद्योगों के विकास और विनियमन का उपबन्ध करने के लिए अधिनियमित अधिनियम में ही घोषणा की गई है। अतः नियंत्रण सामान्य रूप से ग्रहण नहीं किया गया था अपितु एक विनिर्दिष्ट और स्पष्ट उद्देश्य अर्थात् कतिपय उद्योगों के विकास और विनियमन के लिए ग्रहण किया गया था। जिन उद्योगों के विकास और विनियमन के प्रयोजन के लिए उनकी बाबत नियंत्रण ग्रहण किया गया था वे अनुसूची में उपवर्णित हैं। इस नियंत्रण का प्रयोग कानून में उपबन्धित रीति से ही किया जाना है। नियंत्रण ग्रहण करने के लिए घोषणा उसी अधिनियम में देखी जा सकती है जिसमें कि नियंत्रण की परिसीमा का उपबन्ध किया गया है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि संसद ने अधिनियम की अनुसूची में उपवर्णित घोषित उद्योगों

1980(4) eILR(PAT) SC 201

की बाबत अधिनियम में उल्लिखित विस्तार तक नियंत्रण ग्रहण करने के लिए घोषणा की थी। सूची 1 की प्रविष्टि 52 को दृष्टि में रखते हुए संसद को इस बारे में किसी उद्योग या किन्हीं उद्योगों की बाबत घोषणा करने की छूट प्राप्त है कि संघ उसे या उन्हें लोक हित में अपने नियंत्रण में ले लेगा। यह कोई सामान्य नियंत्रण नहीं होगा। नियंत्रण को ठोस और विनिर्दिष्ट होना है तथा उसके प्रयोग की रीति इस सुस्थापित प्रतिपादना को दृष्टि में रखते हुए अधिकथित की जानी है कि कार्यपालक प्राधिकारी को अपनी कार्यवाही के लिए विधि का समर्थन अवश्य प्राप्त होना चाहिए। विधि के शासन द्वारा शासित होने वाले किसी देश में यदि देश के शासन के लिए उत्तरादायी संघ को संसद द्वारा की गई किसी घोषणा के आधार पर किन्हीं उद्योगों को अपने नियंत्रण में लेना है तो उस नियंत्रण का प्रयोग विधि द्वारा ही किया जाना होगा। ऐसी विधि में नियंत्रण का विस्तार, उसके प्रयोग की रीति और उसके प्रवर्तन का ढंग तथा उसके भंग के परिणाम विहित किए जाने होंगे। सामान्य नियंत्रण जैसी कोई संकल्पना नहीं है। नियंत्रण को ठोस होना है और उसके प्रयोग का ढंग विधि द्वारा विनियमित होना चाहिए। इस मामले में संसद ने कोई सामान्य घोषणा नहीं की थी अपितु उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम के भाग के रूप में घोषणा की थी और नियंत्रण अधिनियम से संलग्न प्रथम अनुसूची में विनिर्दिष्ट उद्योगों की बाबत था। धारा 3 से 30 तक में उस नियंत्रण को प्रभावशील करने के लिए विभिन्न ढंग और तरीके, प्रक्रिया तथा शक्ति उपवर्णित की गई है जो कि संघ ने धारा 2 में अन्तर्विष्ट घोषणा के आधार पर अपने हाथ में लिया है। (पैरा 11)

यदि तत्वत: और सारत: कोई विधान किसी एक या दूसरी प्रविष्टि के अन्तर्गत आता है किन्तु उस विधान की विषयवस्तु का कोई एक भाग प्रसंगत: किसी अन्य सूची के अधीन की किसी प्रविष्टि में अतिक्रमण करता है या हस्तक्षेप करता है तो ऐसे प्रासंगिक अतिक्रमण के होते हुए भी समग्र रूप से वह अधिनियम विधिमान्य होगा। यू० पी० शुगर अंडरटेकिंग्ज(एक्विजीशन) ऐक्ट, 1971 के सभी उपबन्धों की विस्तृत जांच निर्विवाद रूप से यह दर्शित करती है कि तत्वत: और सारत: आक्षेपकृत अधिनियम अनुसूचित उपक्रमों के अर्जन के लिए है और अनुसूचित उपक्रमों के स्वामित्व के निगम को अन्तरण द्वारा ऐसा अर्जन किसी भी तरह से उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम के उपबन्धों के विरुद्ध नहीं होगा या उद्योग(विकास और विनियमन) अधिनियम के विभिन्न उपबन्धों के अधीन संघ द्वारा प्रयुक्त नियंत्रण में हस्तक्षेप नहीं करेगा। वस्तुत: उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम मोटे तौर

पर घोषित उद्योगों के औद्योगिक उपक्रमों के स्वामित्व के सम्बन्ध में नहीं है। मुख्य रूप से यह अधिनियम घोषित उद्योगों के विकास और विनियमन के सम्बन्ध में है। उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम की धारा 18-क और 18-कक के अधीन केन्द्रीय सरकार को कतिपय मामलों में औद्योगिक उपक्रमों के प्रबन्ध और नियंत्रण को सीधे ही अपने हाथ में लेने की शक्ति प्राप्त है और आक्षेपकृत विधान के अधीन अनुसूचित उपक्रमों के अर्जन के पश्चात् भी धारा 18-क और 18-कक के अधीन केन्द्रीय सरकार की शक्ति अप्रभावित बनी रहेगी। धारा 18-क में भी किसी ऐसी कम्पनी का प्रबन्ध और नियंत्रण उच्च न्यायालय की अनुज्ञा से ग्रहण कर लेने का उपबन्ध किया गया है जो समापनाधीन हो और ऐसी स्थिति में केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त प्राधिकृत व्यक्ति धारा 18 चक की उपधारा (4) के अधीन शासकीय समापक समझा जाएगा। उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम के अध्याय 3-कग में अन्तर्विष्ट उपबन्ध केन्द्रीय सरकार को कतिपय परिस्थितियों में औद्योगिक उपक्रम के विक्रय का निदेश देने में और धारा 18 चङ (7) में उपवर्णित स्थिति में उसे खरीदने का निदेश देने में समर्थ बनाता है। किन्तु इन शक्तियों का प्रयोग इस तथ्य पर विचार किए बिना भी किया जा सकता है कि सुसंगत समय पर उपक्रम का स्वामी कौन था। आक्षेपकृत अधिनियम के अधीन अर्जन द्वारा और अनुसूचित उपक्रमों के निगम में निहित हो जाने के कारण भी अनुसूचित उपक्रम उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम के उपबन्धों के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रयुक्त किए जाने वाले नियंत्रण के अधीन ही होंगे क्योंकि निगम स्वामी होगा और केन्द्रीय सरकार के प्राधिकार और अधिकारिता के प्रति उत्तरदायी होगा क्योंकि चीनी के घोषित उद्योग के कारण उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम के उपबन्ध अनुसूचित उपक्रमों को भी लागू होते रहेंगे तथा अनुसूचित उपक्रम उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम के अर्थान्तर्गत औद्योगिक उपक्रम हैं। अतः आक्षेपकृत विधान और उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम के उपबन्धों के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा ग्रहण किए जाने वाले नियंत्रण के बीच कोई विरोध नहीं है तथा आक्षेपकृत विधान द्वारा उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम के क्षेत्र में कोई दूरस्थ अधिक्रमण भी नहीं होता है। आक्षेपकृत विधान का तात्पर्य उत्तर प्रदेश में चीनी उद्योग का राष्ट्रीयकरण करने का नहीं है तथा सरकार के स्वामित्वाधीन किसी कम्पनी या निगम को एक समुचित अनुज्ञप्ति के अधीन चीनी विनिर्माण उपक्रम स्थापित करने के लिए कोई वर्जन नहीं है। अतः इस आधार पर आक्षेपकृत विधान केन्द्रीय अधिनियम

1980(4) eILR(PAT) SC 201

के क्षेत्र में अधिक्रमण नहीं करता है। अतः स्पष्ट है कि दोनों अधिनियम एक साथ विद्यमान रह सकते हैं क्योंकि उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम के अधीन संघ द्वारा अर्जित शक्ति का प्रयोग अनुसूचित उपक्रमों के अर्जन के पश्चात् भी उतने ही प्रभावपूर्ण ढंग से किया जा सकता है जितना कि अर्जन के पूर्व किया जा सकता था। अतः इस दलील का खण्डन किया जाना होगा कि राज्य विधानमण्डल आक्षेपकृत विधान अधिनियमित करने के लिए विधायी रूप से सक्षम नहीं था। (पैरा 13, 15, 26, 27)

उद्योग (विकास और विनियमन) विकास अधिनियम की धारा 20 राज्य सरकार या स्थानीय प्राधिकारी को घोषित उद्योग में किसी औद्योगिक उपक्रम का प्रबन्ध या नियंत्रण ग्रहण करने से निषिद्ध करती है। सही अर्थान्वयन के आधार पर धारा 20 किसी राज्य सरकार या स्थानीय प्राधिकारी को तत्समय प्रवृत्त किसी ऐसी विधि के अधीन जो कि ऐसी सरकार या स्थानीय प्राधिकारी को ऐसा करने के लिए प्राधिकृत करती है किसी औद्योगिक उपक्रम का नियंत्रण या प्रबन्ध ग्रहण करने से प्रवारित करती है। आक्षेपकृत विधान राज्य सरकार द्वारा किसी औद्योगिक उपक्रम का प्रबन्ध या नियंत्रण ग्रहण करने के लिए अधिनियमित नहीं किया गया था। तत्वतः और सारतः वह अनुसूचित उपक्रमों को अर्जित करने के लिए अधिनियमित किया गया था। यदि किसी घोषित उद्योग के किसी औद्योगिक उपक्रम का प्रबन्ध या नियंत्रण ग्रहण करने का प्रयास किया गया हो तो निर्विवाद रूप से धारा 20 ऐसी कार्यपालक शक्ति के प्रयोग को निषिद्ध करेगी। तथापि, यदि अनुसूचित उपक्रम के अर्जन के लिए विधिमान्य विधान के अनुसरण में अर्जित करने वाले निकाय को प्रबन्ध अन्तरित हो जाता है तो यह नहीं कहा जा सकता है कि इससे धारा 20 का उल्लंघन होगा। धारा 20 किसी ऐसी प्रवृत्त विधि के अधीन जो कि राज्य सरकार या स्थानीय प्राधिकारी को ऐसा करने के लिए प्राधिकृत करती है किसी औद्योगिक उपक्रम का प्रबन्ध या नियंत्रण ग्रहण करने के लिए कोई कार्यपालक कार्यवाही निषिद्ध करती है। धारा 20 का निषेध कार्यपालक शक्ति के प्रयोग पर है किन्तु यदि किसी औद्योगिक उपक्रम के अर्जन के परिणामस्वरूप उस औद्योगिक उपक्रम का प्रबन्ध या नियंत्रण अर्जित करने वाले प्राधिकारी को अन्तरित हो जाता है तो धारा 20 कदापि लागू नहीं होती है। धारा 20 किसी राज्य विधानमण्डल को सूची 2 की प्रविष्टि 24 से भिन्न किसी प्रविष्टि के अधीन विधायी शक्ति का प्रयोग करने से निषिद्ध करती है और यदि उस विधायी शक्ति के प्रयोग में अर्थात् किसी घोषित उद्योग के औद्योगिक उपक्रम को अर्जित करने की शक्ति के प्रयोग में अर्जन की प्रसंगति के तौर पर उद्योग या उपक्रम के प्रबन्ध या नियंत्रण का पारिणामिक अन्तरण

होता है तो किसी विधायी शक्ति के प्रयोग के अनुसरण में ऐसा प्रबन्ध या नियंत्रण ग्रहण किया जाना धारा 20 के निषेध के भीतर नहीं आता है। अतः इस दलील में कोई सार नहीं है कि आक्षेपकृत विधान से धारा 20 का उल्लंघन होता है। (पैरा 30, 31)

यदि किसी विधान में प्रतिकर के अवधारण के सिद्धान्तों का अर्थात् अवलिखित मूल्य के, जैसा कि आयकर विधि में समझा जाता है, प्रयुक्त मशीनरी के मूल्य के समतुल्य होने का उपबन्ध किया गया हो तो उस सिद्धान्त के बारे में न तो यही कहा जा सकता है कि वह प्रतिकर के अवधारण से विसंगत है और न ही इस प्रकार अधिनिर्णीत प्रतिकर को काल्पनिक कहा जा सकता है। इस मामले में प्रतिकर आक्षेपकृत अधिनियम की अनुसूची में निर्धारित किया गया है और विनिर्दिष्ट किया गया है। प्रतिकर पूर्णांकों में अवधारित किया गया है। वस्तुतः इस न्यायालय ने यह स्वीकार किया है कि मशीनरी के लिए आयकर विधि के अनुसार परिकलित अवलिखित मूल्य के आधार पर प्रतिकर का संदाय, प्रतिकर अवधारित करने के सिद्धान्त के रूप में विसंगत नहीं है। उस सिद्धान्त को लागू करके जो कि मशीनरी के मूल्य के अवधारण के लिए विधिमान्य थे किए गए परिकलन के आधार पर प्रतिकर की पर्याप्तता या अपर्याप्तता न्यायिक पुनर्विलोकन से परे है। ऐसे सिद्धान्त को विसंगत या प्रतिकर को काल्पनिक नहीं कहा जा सकता। तदनुसार अनुच्छेद 31(2) के अधिक्रमण के आधार पर आक्षेपकृत विधान की विधिमान्यता को दी गई चुनौती असफल होगी। (पैरा 34, 37, 39)

सरकार के लिए सभी चीनी उपक्रमों को ऐसे उपक्रमों के साथ एक ही समूह में रखना कठिन होता जिन्हें कि किसी तरह से जीवित रखा जा रहा था। ऐसा बोधगम्य विभेद स्पष्ट प्रकट होता है जिसके द्वारा असहनीय स्थिति में के उपक्रमों को एक साथ एक ही समूह में वर्गीकृत किया गया है। अधिनियम द्वारा किया जाने वाला अर्जन उन उपक्रमों को पुनरुज्जीवित करने के स्पष्ट उद्देश्य के लिए और गन्ना उत्पादकों तथा श्रमिकों के, जिनके कष्टों का कोई अन्त नहीं था, संदाय को प्राथमिकता देकर उस क्षेत्र की अर्थव्यवस्था को सुधारने के लिए था। इस प्रकार निस्संदेह इस विभेद का अधिनियम द्वारा प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य से तर्कसंगत सम्बन्ध है और उसे अनुच्छेद 14 के आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती। (पैरा 43)

	निर्दिष्ट निर्णय	पैरा
[1978]	[1978] 4 उम० नि० प० 324=[1978] 1 एस० सी० आर० 641 :	

	कर्नाटक राज्य और एक अन्य बनाम रंगनाथ रेड्डी और एक अन्य (State of Karnatka and Another *v.* Ranganatha Reddy and Another);	13
[1977]	[1977] 1 उम० नि० प० 965=[1976] 3 एस० सी० आर० 688 : हरियाणा राज्य और अन्य बनाम चानन मल (State of Haryana and Others *v.* Chanan Mal);	8, 24, 45
[1976]	[1976] 1 उम० नि० प० 1331=[1976] 1 एस० सी० आर० 552 : केरल राज्य विद्युत बोर्ड बनाम इण्डियन एल्युमिनियम कम्पनी लिमिटेड (Kerala State Electricity Board *v.* Indian Aluminium Company Limited);	13
[1974]	[1974] 3 उम० नि० प० 1045=[1970] 3 एस० सी० आर० 530 : रुस्तम कावसजी कूपर बनाम भारत संघ (Rustom Cavasjee Coopor *v.* Union of India);	18, 19, 21, 34, 36
[1973]	[1973] 2 उम० नि० प० 159=[1973] सप्लीमेण्ट एस० सी० आर० 1 : पूज्य श्री केशवानन्द भारती श्री पदगलवरु बनाम केरल राज्य (His Holiness Kesavananda Bharati Sripadgalavaru *v.* State of Kerala);	35, 36, 37
[1972]	[1972] 1 उम० नि० प० 565=[1972] 2 एस० सी० आर० 33 : भारत संघ बनाम एस० एस० ढिल्लों (Union of India *v.* S. S. Dhillon);	13

[1972]	[1972] 3 उम० नि० प० 376=[1973] 1 एस० सी० आर० 356 : कन्नन देवन हिल्स प्रोड्यूस कम्पनी लिमिटेड बनाम केरल राज्य और एक अन्य (Kannan Devan Hills Produce Company Limited *v.* The State of Kerala and Another);	22
[1970]	[1970] 3 उम० नि० प० 142=[1970] 2 एस० सी० आर० 100 : बैज नाथ केडिया बनाम बिहार राज्य और अन्य (Baij Nath Kedia *v.* State of Bihar and Others);	7,11,45
[1969]	[1969] 3 उम० नि० प० 753=[1969] 3 एस० सी० आर० 341 : गुजरात राज्य बनाम शान्तिलाल मंगल दास और अन्य (State of Gujarat *v.* Shantilal Mangaldas and Others);	33, 34
[1967]	[1967] 1 एस० सी० आर० 256 : भारत संघ बनाम मेटल कारपोरेशन ऑफ इण्डिया लिमिटेड और एक अन्य (Union of India *v.* Metal Corporation of India Limited and Another);	33
[1965]	[1965] 1 एस० सी० आर० 614 : वज्रवेलु मुदलियार बनाम स्पेशल डिप्टी कलक्टर आफ लैण्ड एक्वीजीशन, वेस्ट मद्रास (Vajravalu Mudaliar *v.* Special Deputy Collector of Land Acquisition, West Madras);	33, 34
[1964]	[1964] 1 एस० सी० आर० 371 : पश्चिमी बंगाल राज्य बनाम भारत संघ (State of West Bengal *v.* Union of India);	20, 21, 24

[1964]	[1964] 4 एस० सी० आर० 461 : **उड़ीसा राज्य बनाम एम० ए० तुल्लोक एण्ड कम्पनी** (State of Orissa *v.* M. A. Tulloch and Co.);	45
[1961]	[1961] 2 एस० सी० आर० 537 : **हिंगिर-रामपुर कोल कम्पनी लिमिटेड और अन्य बनाम उड़ीसा राज्य और अन्य** (Hingir-Rampur Coal Co. Limited and Others *v.* State of Orissa and Others);	45
[1954]	[1954] एस० सी० आर० 779 : **राजामुन्दरी इलैक्ट्रिक सप्लाई कारपोरेशन लिमिटेड बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य** (Rajamundry Electric Supply Corporation Limited *v.* State of Andhra Pradesh);	18, 19
[1952]	[1952] एस० सी० आर० 889 : **बिहार राज्य बनाम महाराजाधिराज सर कामेश्वर सिंह** (State of Bihar *v.* Maharajadhiraja Sir Kameshwar Singh);	18, 19
[1950]	[1950] ए० सी० 122 : **कनाडियन पेसिफिक रेलवे कम्पनी बनाम अटर्नी जनरल** (Canadian Pacific Railway Company *v.* Attorney General).	23

सिविल अपीली अधिकारिता : 1979 की सिविल अपील सं० 1614, 1652 और 1637.

सिविल प्रकीर्ण रिट सं० 4170/71, 4130/71 तथा 4193/71 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के तारीख 3 मई, 1979 वाले निर्णय और आदेश के विरुद्ध विशेष इजाज़त लेकर की गई अपीलें ।

1980(4) eILR(PAT) SC 201

तथा

1979 के विशेष इजाजत पिटीशन (सिविल) सं० 6246, 6373, 6252 और 8050.

सिविल प्रकीर्ण रिट सं० 4150/71, 4173/71, 4793/71 और 4422/71 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के तारीख 3 मई, 1979 वाले निर्णय और आदेश के विरुद्ध किए गए विशेष इजाज़त पिटीशन।

अपीलार्थियों की ओर से (सिविल अपील सं० 1614/79 में)	सर्वश्री एफ० एस० नरीमन, भास्कर गुप्त, राजेश खेतान, रोहिंगटन नरीमन और पी० आर० सीताराम
अपीलार्थियों की ओर से (सिविल अपील सं० 1652/79 तथा विशेष इजाज़त पिटीशन सं० 6246 तथा 6373/79 में)	श्री ए० के० सेन, श्री मनोज स्वरूप, कुमारी ललिता कोहली और श्री एस० के० श्रीवास्तव
पिटीशनर की ओर से (विशेष इजाज़त पिटीशन सं० 6252/79 में)	श्री आर० ए० गुप्त
पिटीशनर की ओर से (विशेष इजाज़त पिटीशन सं० 8050/79 में)	सर्वश्री एन० यू० शर्मा और एन० एन० कक्कड़
प्रत्यर्थियों की ओर से (सभी अपीलों में)	श्री लाल नारायण सिन्हा, महान्यायवादी (सिविल अपील 1614 में), श्री रिशी राम, महाधिवक्ता उत्तर प्रदेश (सिविल अपील 1652 में), श्री राजू रामचन्द्रन और श्री ओ० पी० राणा

अभिलेख-अधिवक्ता

अपीलार्थियों की ओर से (सिविल अपील सं० 1614 में)	मैसर्स खेतान एण्ड कम्पनी
अपीलार्थियों की ओर से (सिविल अपील सं० 1652/79 और विशेष इजाज़त पिटीशन सं० 6246 और 6373/79 में)	मैसर्स मनोज स्वरूप एण्ड कम्पनी
अपीलार्थियों की ओर से (सिविल अपील सं० 1637 में)	श्री अशोक के० श्रीवास्तव

1980(4) eILR(PAT) SC 201

पिटीशनर की ओर से (विशेष इजाजत पिटीशन (सं० 6252/79 में)	श्री आर० ए० गुप्त
पिटीशनर की ओर से (विशेष इजाजत पिटीशन सं० 8050/79 में)	मैसर्स शर्मा अग्रवाल एण्ड कम्पनी
प्रत्यर्थियों की ओर से (सभी अपीलों में)	श्री ओ० पी० राणा

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति डी० ए० देसाई ने दिया।

न्यायाधिपति देसाई—

आधारभूत आवश्यकता को पूरा करने वाली वस्तु—चीनी के विनिर्माण में अन्तर्वलित औद्योगिक उपक्रमों का बृहत्तर लोक हित में अर्जन और उपक्रमों के स्वामियों का उस अर्जन का विरोध करने का प्रयत्न ही इन अपीलों के समूह की मुख्य विषयवस्तु है।

2. उत्तर प्रदेश राज्य में कुछ चीनी मिलों के स्वामियों द्वारा गन्ना उत्पादकों और चीनी मिलों में नियोजित श्रमिकों के लिए उत्पन्न की गई गम्भीर समस्याओं के परिणामस्वरूप, जिनका उन क्षेत्रों की सामान्य अर्थ-व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा था, जिनमें कि ये चीनी मिलें स्थित हैं और अर्थ-व्यवस्था के लिए गम्भीर चुनौती उत्पन्न करने वाली स्थिति का सामना करने की दृष्टि से उत्तर प्रदेश के राज्यपाल ने तारीख 3 जुलाई, 1971 को यू० पी० शुगर अण्डरटेकिंग्ज (एक्विजीशन) आर्डिनेंस, 1971 (1971 का 13) (जिसे संक्षेप में अध्यादेश कहा गया है), उस अध्यादेश की अनुसूची में उपवर्णित चीनी उपक्रमों को यू० पी० स्टेट शुगर कारपोरेशन लिमिटेड को (जिसे संक्षेप में निगम कहा गया है), जो कि कम्पनी अधिनियम, 1956 की धारा 617 के अर्थान्तर्गत सरकारी कम्पनी है, अन्तरित करने और उसमें निहित करने के लिए प्रख्यापित किया था। यू० पी० शुगर अण्डरटेकिंग्ज (एक्विजीशन) ऐक्ट, 1971 (1971 का उत्तर प्रदेश अधिनियम 23) (जिसे संक्षेप में अधिनियम कहा गया है) द्वारा अध्यादेश निरसित कर दिया गया था और उसके स्थान पर उक्त अधिनियम प्रतिस्थापित कर दिया गया था। अधिनियम की अनुसूची में 12 चीनी उपक्रम (जिन्हें अनुसूचित उपक्रम कहा गया है) प्रगणित किए गए थे और धारा 3 के प्रवर्तन द्वारा ये अनुसूचित उपक्रम नियत दिन से अर्थात् 3 जुलाई, 1971 से, जिस तारीख को अध्यादेश जारी किया

1980(4) eILR(PAT) SC 201

गया था, निगम को अन्तरित कर दिए गए थे और उसमें निहित हो गए थे। अध्यादेश के प्रख्यापन पर इलाहाबाद उच्च न्यायालय में संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन उस अध्यादेश की सांविधानिक विधिमान्यता को चुनौती देते हुए 11 रिट पिटीशन फाइल किए गए थे और जब अध्यादेश के स्थान पर 23 अगस्त, 1971 से प्रभावी होने वाला अधिनियम प्रतिस्थापित कर दिया गया था तब रिट पिटीशन संशोधित किए गए थे और उनमें अधिनियम को चुनौती भी समाविष्ट कर दी गई थी। उच्च न्यायालय में अध्यादेश तथा अधिनियम को निम्नलिखित आधारों पर चुनौती दी गई थी—

"(1) राज्य विधानमण्डल उन्हें अधिनियमित करने के लिए विधायी रूप से सक्षम नहीं था;

(2) अधिनियम से संविधान के अनुच्छेद 31 का अतिक्रमण होता था क्योंकि वह अर्जन लोक प्रयोजन के लिए नहीं था और उस अधिनियम में प्रतिस्थापित प्रतिकर काल्पनिक था;

(3) अधिनियम के संविधान के अनुच्छेद 19(1) (च) और (छ) का भंग होता था;

(4) अधिनियम द्वारा संविधान के अनुच्छेद 14 में समाविष्ट समता की गारण्टी का अतिलंघन होता था।"

उच्च न्यायालय की खण्ड न्यायपीठ ने तारीख 3 मई, 1979 वाले एक सामान्य निर्णय द्वारा पिटीशनरों की ओर से दी गई दलीलों का खण्डन कर दिया और अधिनियम की सांविधानिक विधिमान्यता की पुष्टि कर दी। इसलिए अनुसूचित उपक्रमों के स्वामी—मूल पिटीशनरों ने ये अपीलें की हैं।

3. श्री एफ० एस० नरीमन ने, जो कि अपीलार्थियों के विद्वान् काउन्सेल हैं, अपने आक्षेप को दो आधारों तक ही सीमित रखा है—(क) उत्तर प्रदेश राज्य विधानमण्डल को आक्षेपकृत अधिनियम अधिनियमित करने की विधायी क्षमता प्राप्त नहीं थी और (ख) अर्जन के लिए अधिनिर्णीत प्रतिकर से अनुच्छेद 31(2) का, जैसा कि वह संविधान (25वां संशोधन) अधिनियम, 1971 के, जो कि 20 अप्रैल, 1972 को प्रवृत्त हुआ था, पूर्व था, अतिक्रमण होता है। श्री आर० ए० गुप्त ने जो कि 1979 के विशेष इजाजत पिटीशन सं० 6252 में उपसंजात हुए थे, यह अतिरिक्त दलील भी पेश की थी कि आक्षेपकृत अधिनियम से अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण होता है क्योंकि समान रूप से स्थित और समान परिस्थितियों वाले चीनी उपक्रमों

1980(4) eILR(PAT) SC 20

को अर्जित नहीं किया गया है और अर्जन द्वारा प्रबन्ध ग्रहण करने के कठोर व्यवहार के लिए पिटीशनरों के अनुसूचित उपक्रमों को पृथक् कर लिया गया है।

4. आक्षेप का मुख्य आधार यह था कि उत्तर प्रदेश विधानमण्डल आक्षेपकृत अधिनियम अधिनियमित करने के लिए विधायी रूप से सक्षम नहीं था। इस निवेदन के दो सुभिन्न भाग थे जिनकी पृथक्-पृथक् रूप से जांच की जाएगी। निवेदन का प्रथम भाग यह था कि सूची 2 की प्रविष्टि 52 से उत्पन्न होने वाली विधायी शक्ति के प्रयोग में संसद् ने उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1951 (जिसे संक्षेप में आई० डी० आर० अधिनियम कहा गया है) की धारा 2 में अपेक्षित घोषणा की थी और आई० डी० आर० अधिनियम की प्रथम अनुसूची की प्रविष्टि 25 की दृष्टि से चीनी के घोषित उद्योग होने के कारण वह उद्योग सूची 2 की प्रविष्टि 24 से बाहर हो जाती है इसलिए उत्तर प्रदेश राज्य विधानमण्डल को चीनी उद्योग की बाबत विधान बनाने की कोई विधायी शक्ति नहीं थी और आक्षेपकृत विधान चीनी उद्योग के औद्योगिक उपक्रम की बाबत होने के कारण वह विधायी अक्षमता के कारण शून्य है। विद्वान् महान्यायवादी ने इसका खण्डन यह कहते हुए किया कि उस सम्पत्ति को अर्जित करने की शक्ति सूची 3 की प्रविष्टि 42 से व्युत्पन्न हुई थी जो कि एक स्वतन्त्र शक्ति है और आक्षेपकृत अधिनियम सारतः अनुसूचित उपक्रमों को अर्जित करने वाला अधिनियम होने के कारण राज्य विधानमण्डल की इस निमित्त विधान बनाने की शक्ति प्रविष्टि 42 के प्रतिनिर्देश से उत्पन्न होती है क्योंकि वह केवल अनुसूचित उपक्रमों की बाबत है और इस तथ्य के होते हुए भी वह शक्ति प्रभावित नहीं होती है कि चीनी एक घोषित उद्योग है जिसका नियंत्रण आई० डी० आर० अधिनियम की धारा 2 के अधीन की गई घोषणा के अनुसरण में संघ सरकार ने ग्रहण कर लिया है। इसके कारण, विधायी दृष्टिकोण और उस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए जिनसे ये प्रविष्टियां गुजरी हैं, सुसंगत प्रविष्टियों की विश्लेषणात्मक जांच करना आवश्यक हो जाता है।

5. संघ सूची की प्रविष्टि 7 इस प्रकार है—

> "संसद् द्वारा, विधि द्वारा प्रतिरक्षा के प्रयोजन के लिए अथवा युद्ध चलाने के लिए आवश्यक घोषित किए गए उद्योग।"

उसी सूची की प्रविष्टि 52 इस प्रकार है—

> "वे उद्योग जिनके लिए संसद् ने विधि द्वारा घोषणा की है कि लोकहित के लिए उन पर संघ का नियंत्रण इष्टकर है।"

सूची 2 (राज्य सूची) की प्रविष्टि 24 इस प्रकार है—

> "सूची 1 की प्रविष्टि 7 और 52 के उपबन्धों के अधीन रहते हुए उद्योग।"

यहां पर यह अवलोकनीय है कि सूची 1 की प्रविष्टि 33, सूची 2 की प्रविष्टि 36 और सूची 3 की प्रविष्टि 42 संविधान (सप्तम संशोधन) अधिनियम की धारा 26 द्वारा संशोधित की गई थीं जिसके द्वारा सूची 1 की प्रविष्टि 33 और सूची 2 की प्रविष्टि 36 विलोपित कर दी गई थी तथा सूची 3 की प्रविष्टि 42 उस रूप में संशोधित कर दी गई थी जिसमें कि वह ऊपर उपवर्णित की गई है। सूची 1 की प्रविष्टि 33 और सूची 2 की प्रविष्टि 36 क्रमशः संघ और राज्यों को अपने प्रयोजन के लिए सम्पत्ति के अर्जन और अधिग्रहण के लिए विधायी शक्ति प्रदत्त करती थी। संविधान (सप्तम संशोधन) अधिनियम, 1956 जिसके द्वारा पूर्वोक्त संशोधन किया गया था, सम्पत्ति के अर्जन और अधिग्रहण की शक्ति की बाबत इस संदिग्धता को दूर करने के लिए परिकल्पित था कि वह शक्ति किसी विधायी शक्ति की आनुषंगिक नहीं थी अपितु वह स्वयं ही एक स्वतन्त्र शक्ति थी। संशोधन में अन्तर्विहित उद्देश्य को इस प्रकार स्पष्ट किया गया है—"सरकार द्वारा सम्पत्ति के अर्जन और अधिग्रहण के अनिवार्यतः एक ही विषय के सम्बन्ध में विधायी सूचियों में तीन प्रविष्टियों (सूची 1 की 33, सूची 2 की 36 और सूची 3 की 42) की विद्यमानता के कारण विधान में अनावश्यक तकनीकी कठिनाइयां उत्पन्न होती हैं। इन कठिनाइयों को दूर करने और सांविधानिक स्थिति का सरलीकरण करने के लिए संघ और राज्य सूचियों में से प्रविष्टियों का लोप कर देने और समवर्ती सूची में उस प्रविष्टि के स्थान पर सम्पूर्ण विषय को समाविष्ट करते हुए एक व्यापक प्रविष्टि प्रतिस्थापित करने की प्रस्थापना है।" [संविधान (सप्तम संशोधन) अधिनियम, 1956 की बाबत उद्देश्यों और कारणों का कथन देखिए।]

6. ऐतिहासिक पृष्ठभूमि देने के पश्चात् अब "उद्योग" विषय की बाबत सूची 1 की प्रविष्टि 52 से और सूची 2 की प्रविष्टि 24 से उत्पन्न होने वाली संघ और राज्यों की विधायी शक्ति के क्षेत्र और विस्तार की ओर ध्यान दिया जा सकता है।

7. उस सम्भाव्य भ्रान्ति को दूर करने के लिए जिसकी सूची 1 की प्रविष्टि 52 और सूची 2 की प्रविष्टि 24 की परस्पर निर्भरता और पारस्परिक प्रभाव से उत्पन्न होने की सम्भावना है, इन दो प्रविष्टियों के क्षेत्र

और विस्तार के बीच ठीक-ठीक विभाजन रेखा खींची जानी है। "उद्योग" विधायन के एक शीर्ष के रूप में सूची 2 की प्रविष्टि 24 में इस परिसीमा के साथ देखा जा सकता है कि यह सूची 1 की प्रविष्टि 7 और 52 के उपबन्धों के अध्यधीन है। प्रविष्टि 7 और 52 की भाषा के बीच अन्तर का प्रविष्टि 52 के निर्वचन से सम्बन्ध है। पूर्वकथित मामले में यदि संसद् यह घोषणा कर देती है कि कोई विशिष्ट उद्योग प्रतिरक्षा के प्रयोजन के लिए अथवा युद्ध चलाने के लिए आवश्यक है तो संसद् राज्य विधानमण्डलों को अपवर्जित करते हुए उस उद्योग की बाबत विधान बनाने के लिए अनन्यतः हकदार होगी क्योंकि अपेक्षित घोषणा का प्रभाव उस उद्योग को सूची 2 की प्रविष्टि 24 से बाहर कर देने का होगा। संसद् द्वारा विधि द्वारा किसी विशिष्ट उद्योग का नियंत्रण लोक हित में ग्रहण करने के लिए घोषणा सूची 1 की प्रविष्टि 52 के अधीन उस उद्योग की बाबत विधान बनाने की संसद् को शक्ति प्रदान करने के लिए अनिवार्य है क्योंकि अन्यथा विधायन के सामान्य शीर्ष के तौर पर उद्योग सूची 2 की प्रविष्टि 24 के अनुसरण में राज्य के विधायी क्रियाकलापों के अनन्य क्षेत्र के भीतर आता है। भाग 11 और अनुच्छेद 246 में यथा अधिनियमित विधायी शक्तियों का वितरण संसद् के लिए और राज्य विधानमण्डलों के लिए तथा समवर्ती सूची के लिए, जिसकी बाबत भाग 11 के अन्य उपबन्धों के अधीन रहते हुए दोनों ही विधान बना सकते हैं, विधायी क्रियाकलापों के क्षेत्र के बीच स्पष्ट रूप से विभाजन रेखा खींचता हैं। अनुच्छेद 246 के उप-अनुच्छेद (3) में यह उपबन्ध किया गया है कि सप्तम अनुसूची की सूची 2 में प्रगणित किन्हीं भी विषयों की बाबत राज्य विधानमण्डल को विधियां बनाने की अनन्य शक्ति प्राप्त है और भी प्रबल रूप से, उद्योग के सूची 2 में प्रगणित विषय होने के कारण, उसकी बाबत विधान बनाने की राज्य विधानमण्डल को अनन्य शक्ति प्राप्त है और थोड़ी देर के लिए "सूची 1 की प्रविष्टि 7 और 52 के उपबन्धों के अधीन रहते हुए" शब्दों को हटा देने पर केवल राज्य विधानमण्डल ही 'उद्योग' विधायन शीर्ष की बाबत विधान बना सकता है। तथ्यतः संसद् को विधायी शीर्ष के तौर पर उद्योग की बाबत विधान बनाने की कोई शक्ति प्राप्त नहीं हो सकती थी। सूची 1 की प्रविष्टि 52 संसद को तब तक विधायी क्रियाकलापों का कोई क्षेत्र प्रदान नहीं करती है जब तक कि संसद् विनिर्दिष्ट उद्योगों का नियंत्रण ग्रहण करने की विधि द्वारा घोषणा न कर दे। उस उद्योग की बाबत जो कि सूची 2 में आता है, विधान बनाने की संसद् की शक्ति पर लगाया गया प्रतिबन्ध सूची 1 की प्रविष्टि 52 में यथा अनुध्यात रूप से संसद् द्वारा घोषणा कर दिए जाने पर समाप्त हो जाएगा। सूची 1 की प्रविष्टि 52 द्वारा यथा अनुध्यात घोषणा के

1980(4) eILR(PAT) SC 201

अभाव में, इस बारे में कोई विवाद नहीं है कि संसद् को उद्योग विषय पर कोई विधान बनाने की शक्ति प्राप्त नहीं है। सूची 1 की प्रविष्टि 2 की भाषा विनिर्दिष्ट उद्योगों पर नियंत्रण ग्रहण करने के लिए मात्र घोषणा ही अनुध्यात नहीं करती है अपितु इस बारे में घोषणा की जाती है कि विनिर्दिष्ट उद्योगों का नियंत्रण लोक हित में विधि द्वारा ग्रहण किया जाएगा। घोषणा द्वारा अर्जित विधान बनाने की शक्ति के अनुसरण में अधिनियमित विधान उद्योग पर नियंत्रण ग्रहण करने के लिए होना चाहिए और उस अधिनियमित विधि द्वारा ही घोषणा की जानी होगी जिसका कि वह घोषणा एक अभिन्न अंग होगी। घोषणा को अन्तर्विष्ट करते हुए नियंत्रण ग्रहण करने के लिए बनाए गए विधान में घोषणा द्वारा इस प्रकार ग्रहण किए गए नियंत्रण की परिसीमा वर्णित होगी। अतः घोषणा के अनुसरण में संसद् द्वारा अर्जित किए जाने वाले नियंत्रण की मात्रा और सीमा ग्रहण किए गए नियंत्रण की मात्रा उपवर्णित करते हुए अधिनियमित विधान पर ही अनिवार्यतः निर्भर करेगी। विधि के बिना घोषणा मात्र सूची 1 की प्रविष्टि 52 से असंगत होगी। सूची 1 की प्रविष्टि 52 के अधीन विधायी कार्यवाही करने के लिए, विनिर्दिष्ट उद्योगों का नियंत्रण अपने हाथ में लेने के लिए की गई घोषणा के साथ नियंत्रण हाथ में लेते हुए बनाई गई विधि एक पूर्वापेक्षा है। घोषणा और घोषणा के अनुसरण में बनाया गया विधान उस सीमा तक सूची 2 की प्रविष्टि 24 के अधीन राज्य विधानमण्डल की विधान बनाने की शक्ति समाप्त कर देता है। अतः घोषित उद्योग की बाबत विधान बनाने की राज्य विधानमण्डल की शक्ति केवल घोषणा के कारण ही समाप्त नहीं हो जाएगी अपितु घोषणा के परिणामस्वरूप बनाई गई उस अधिनियमिति द्वारा समाप्त होगी जिसमें नियंत्रण का क्षेत्र और विस्तार विहित किया गया होगा। जब सूची 1 की प्रविष्टि 52 द्वारा यथा अनुध्यात किसी विशिष्ट उद्योग की बाबत कोई घोषणा की जाती है तब यह दलील दी जाती है कि विधान के विषय के तौर पर 'उद्योग' राज्य के विधायी क्षेत्र से हटा दिया जाएगा। प्रविष्टि 56 द्वारा यथा अनुध्यात खानों और खनिजों की बाबत की गई घोषणा के प्रभाव को इस न्यायालय की सांविधानिक न्यायपीठ ने **बैजनाथ केडिया बनाम बिहार राज्य और अन्य**[1] के मामले में निम्नलिखित शब्दों में बड़े उचित ढंग से अधिकथित किया है—

> "एक बार यदि यह घोषणा कर दी जाती है और इसका विस्तार अधिकथित कर दिया जाता है तो ऐसा विधान-विषय अधि-

---

[1] [1970] 3 उम० नि० प० 142=[1970] 2 एस० सी० आर० 100.

1980(4) eILR(PAT) SC 20

कथित विस्तार तक अनन्य रूप से संसद् की अधिकारिता वाला विधान-विषय बन जाता है। ऐसी घोषणा के उपरान्त राज्य द्वारा बनाया गया विधान, जो घोषणा में प्रकटित क्षेत्र का अतिक्रमण करने वाला हो, अवश्यमेव असंवैधानिक होगा, क्योंकि वह क्षेत्र राज्य विधानमण्डल की सक्षमता से निकाल दिया गया है। अतः विवाद केवल यह हो सकता है कि संसद् द्वारा की गई घोषणा किस विस्तार तक राज्य विधानमण्डल द्वारा विधान की गुंजाइश छोड़ती है। यदि आक्षेपित विधान ऐसे विस्तार के अन्तर्गत आता है तो वह विधिमान्य होगा और यदि उसके बाहर है तो इसे अविधिमान्य घोषित कर दिया जाना चाहिए।"

8. चीनी एक घोषित उद्योग है, तथापि क्या यह कहना ठीक है कि एक बार सूची 1 की प्रविष्टि 52 द्वारा यथा अनुध्यात घोषणा कर दिए जाने पर वह उद्योग सूची 2 की प्रविष्टि 24 से पूर्ण रूप से बाहर हो जाता है? ऊपर उद्धृत अवतरण में सूची 1 की ऐसी ही प्रविष्टि 54 की बाबत यह कहा गया है कि जिस विस्तार तक घोषणा की जाती है और जिस विस्तार तक नियंत्रण ग्रहण किया जाता है केवल उतना क्षेत्र ही राज्य विधानमण्डल की विधायी सक्षमता से निकाल दिया जाता है। अतः यह कहना ठीक नहीं है कि किसी उद्योग की बाबत एक बार घोषणा कर दिए जाने पर वह उद्योग सूची 2 की प्रविष्टि 24 से पूर्ण रूप से निकल जाता है। **हरियाणा राज्य और अन्य बनाम चानन मल**[1] के मामले में हरियाणा मिनरल्स (वेस्टिंग ऑफ राइट्स) ऐक्ट, 1973 की सांविधानिक विधिमान्यता की अभिपुष्टि करते समय खान और खनिज (विनियमन और विकास) अधिनियम, 1957 (जिसे संक्षेप में खान और खनिज अधिनियम कहा गया है) की धारा 2 के अधीन की गई घोषणा को, जैसी कि सूची 1 की प्रविष्टि 54 द्वारा अनुध्यात थी, अवलोकित करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया गया है—

"किन्तु विकास और विनियमन के प्रयोजन के लिए अर्जित करने की शक्ति का प्रयोग 1957 के अधिनियम सं० 67 द्वारा नहीं किया गया है। इस विषय के सम्बन्ध में विधान बनाने सम्बन्धी संसद् की शक्ति की विधिमान्यता किसी अन्य विषय के सम्बन्ध में विधायी शक्ति के प्रयोग की घटना उस रूप में एक बात है। उसका वास्तविक प्रयोग करना दूसरी बात है। यह कहना कठिन है कि अर्जन का क्षेत्र किसी प्रकार से केन्द्रीय अधिनियम के अन्तर्गत उसी प्रकार से आ

[1] [1977] 1 उम० नि० प० 965=[1976] 3 एस० सी० आर० 688.

> सकता था, जिस प्रकार से पश्चिमी बंगाल वाले मामले, (1964 1 एस० सी० आर० 371) में, संसद् ने राज्य में भूमि अर्जन के लिए विधान के पूर्व ही किया था ।"

ये निर्णय प्रमाणित रूप से यह दर्शित करते हैं कि किसी घोषित उद्योग की बाबत सूची 2 की प्रविष्टि 24 के अधीन विधान बनाने की शक्ति से राज्य विधानमण्डल को वंचित करने के पूर्व उस घोषणा का विस्तार और उसके परिणामस्वरूप संघ द्वारा नियंत्रण ग्रहण किए जाने के बीच ठीक-ठीक विभाजन रेखा खींची जानी चाहिए और तब यह अभिनिश्चित किया जाना चाहिए कि क्या आक्षेपकृत विधान अपवादित क्षेत्र में अतिक्रमण करता है ।

9. आई० डी० आर० अधिनियम की धारा 2 में की गई घोषणा इस प्रकार है—

> "तदद्वारा यह घोषित किया जाता है कि लोक हित में यह समीचीन है कि प्रथम अनुसूची में विनिर्दिष्ट उद्योगों को संघ अपने नियंत्रण में ले ले ।"

10. यह दलील दी गई है कि संघ द्वारा घोषणा द्वारा अपने नियंत्रण में लेने की बाबत धारा 2 में कोई परिसीमा विषयक शब्द नहीं हैं इसलिए ऐसी घोषणा का अनिवार्य परिणाम यह है कि राज्य विधानमण्डल को ऐसे घोषित उद्योग की बाबत संव्यवहार करने की शक्ति से पूर्णतया वंचित कर दिया गया है । इस तर्क की पुष्टि के लिए सूची 1 की प्रविष्टि 54 के अनुसरण में संघ द्वारा की गई घोषणा के प्रति, जैसी कि वह खान और खनिज अधिनियम की धारा 2 में उपवर्णित है, निर्देश किया गया था, जो कि इस प्रकार है—

> "एतदद्वारा यह घोषित किया जाता है कि लोक हित में यह समीचीन है कि खानों का विनियमन और खनिजों का विकास इसमें इसके पश्चात् उपबन्धित विस्तार तक संघ अपने नियंत्रण में ले ले ।"

11. "इसमें इसके पश्चात् उपबन्धित विस्तार तक" अभिव्यक्ति के अभाव पर यह उपदर्शित करने के लिए जोर दिया गया था कि जब कि खानों और खनिजों की बाबत संघ ने खान और खनिज अधिनियम में उपबन्धित विस्तार तक ही नियंत्रण अपने हाथ में लिया था, घोषित उद्योगों की बाबत नियंत्रण आत्यंतिक, अपरिसीमित, अनियंत्रित या सम्पूर्ण है और इसलिए "नियंत्रण" शब्द के अभिप्राय के अन्तर्गत जो कुछ भी आएगा वह संघ की सक्षमता के भीतर होगा और उस विस्तार तक तथा उस मात्रा तक

1980(4) eILR(PAT) SC 201

राज्य विधानमण्डल को उस उद्योग की बाबत विधान बनाने की कोई शक्ति नहीं होगी। यह कहा गया था कि घोषित उद्योगों की बाबत संघ पूर्ण नियंत्रण ग्रहण कर लेता है और इसलिए इसके अभिप्राय के अनुसार सूची 2 की प्रविष्टि 24 को इस रूप में पढ़ा जाना होगा कि उस में उद्योग से घोषित उद्योग को छोड़कर शेष उद्योग अभिप्रेत है, क्योंकि सूची 2 की प्रविष्टि 24 सूची 1 की प्रविष्टि 7 और 52 के अध्यधीन है। निस्संदेह संघ उस दशा में किसी उद्योग की बाबत नियंत्रण करने के लिए प्राधिकृत है जब कि संसद् विधि द्वारा ऐसा करना लोक हित में समीचीन समझे। घोषणा संसद् द्वारा की जानी है किन्तु वह घोषणा विधि द्वारा की जानी है न कि मात्र "घोषणा" ही की जानी है। घोषणा करने की शक्ति पर परिसीमा विषयक शब्द "विधि द्वारा" हैं। वह घोषणा उस घोषणा के अनुसरण में अधिनियमित विधि का अभिन्न अंग होनी चाहिए। इस मामले में कतिपय उद्योगों के विकास और विनियमन का उपबन्ध करने के लिए अधिनियमित अधिनियम में ही घोषणा की गई है। अतः नियंत्रण सामान्य रूप से नहीं किया गया था अपितु एक विनिर्दिष्ट और स्पष्ट उद्देश्य अर्थात् कतिपय उद्योगों के विकास और विनियमन के लिए ग्रहण किया गया था। जिन उद्योगों के विकास और विनियमन के प्रयोजन के लिए उनकी बाबत नियंत्रण ग्रहण किया गया था वे अनुसूची में उपवर्णित हैं। इस नियंत्रण का प्रयोग कानून अर्थात् आई० डी० आर० अधिनियम में उपबन्धित रीति से ही किया जाना है। नियंत्रण ग्रहण करने के लिए घोषणा उसी अधिनियम में देखी जा सकती है जिसमें कि नियंत्रण की परिसीमा का उपबन्ध किया गया है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि संसद् ने अधिनियम की अनुसूची में उपवर्णित घोषित उद्योगों की बाबत अधिनियम में उल्लिखित विस्तार तक नियंत्रण ग्रहण करने के लिए घोषणा की थी। यह निवेदन स्वीकार करना कठिन है कि धारा 2 को अधिनियम से हटकर पढ़ा जाना है न कि अधिनियम के भाग-रूप में। ऐसा करना विधायी प्रारूपकारिता की कला के प्रति अन्याय होगा। सूची 1 की प्रविष्टि 52 को दृष्टि में रखते हुए संसद् को इस बारे में किसी उद्योग या किन्हीं उद्योगों की बाबत घोषणा करने की छूट प्राप्त है कि संघ उसे या उन्हें लोक हित में अपने नियंत्रण में ले लेगा। यह कोई सामान्य नियंत्रण नहीं होगा। नियंत्रण को ठोस और विनिर्दिष्ट होना है तथा उसके प्रयोग की रीति इस सुस्थापित प्रतिपादना को दृष्टि में रखते हुए अधिकथित की जानी है कि कार्यपालक प्राधिकारी को अपनी कार्रवाई के लिए विधि का समर्थन अवश्य प्राप्त होना चाहिए। विधि के शासन द्वारा शासित होने वाले किसी देश में यदि देश के शासन के लिए उत्तरदायी, संघ को संसद् द्वारा की गई किसी घोषणा के आधार पर किन्हीं

उद्योगों को अपने नियंत्रण में लेना है तो उस नियंत्रण का प्रयोग विधि द्वारा ही किया जाना होगा। ऐसी विधि में नियंत्रण का विस्तार, उसके प्रयोग की रीति और उसके प्रवर्तन का ढंग तथा उसके भंग के परिणाम विहित किए जाने होंगे। सामान्य नियंत्रण जैसी कोई संकल्पना नहीं है। नियंत्रण को ठोस होना है और उसके प्रयोग का ढंग विधि द्वारा विनियमित होना चाहिए। इस मामले में संसद् ने कोई सामान्य घोषणा नहीं की थी अपितु आई० डी० आर० अधिनियम के भाग के रूप में घोषणा की थी और नियंत्रण अधिनियम से संलग्न प्रथम अनुसूची में विनिर्दिष्ट उद्योगों की बाबत था। धारा 3 से 30 तक में उस नियंत्रण को प्रभावशील करने के लिए विभिन्न ढंग और तरीके, प्रक्रिया तथा शक्ति उपवर्णित की गई है जो कि संघ ने धारा 2 में अन्तर्विष्ट घोषणा के आधार पर अपने हाथ में लिया है। विधायी शीर्ष के रूप में 'उद्योग' सूची 2 की प्रविष्टि 24 में आता है। राज्य विधानमण्डल को प्रविष्टि 24 के अधीन की विधायी शक्ति से उसी विस्तार तक वंचित किया जा सकता है जिस तक कि संसद् प्रविष्टि 52 के अधीन घोषणा कर देती है और ऐसी घोषणा द्वारा संसद् केवल उन्हीं उद्योगों की बाबत विधान बनाने की शक्ति अर्जित कर लेती है जिनकी बाबत घोषणा की गई है और यह शक्ति केवल उसी विस्तार तक होती है जो कि घोषणा को अन्तर्विष्ट करने वाले विधान में उल्लिखित किया गया हो न कि उससे अधिक। अधिनियम में नियंत्रण का विस्तार विहित किया गया है और विनिर्दिष्ट किया गया है। चूंकि घोषणा राज्य की विधायी शक्ति में हस्तक्षेप करती है इसलिए इसका अर्थान्वयन कठोरता से किया जाना होता है। अतः भले ही प्रविष्टि 54 के अधीन, जो कि कुछ हद तक प्रविष्टि 52 के समान ही है, अधिनियमित अधिनियम और ऐसे ही तथा तर्कसंगत कानून में घोषणा करते समय संसद् ने नियंत्रण ग्रहण करते समय "इसमें इसके पश्चात् उपबन्धित विस्तार तक", की अतिरिक्त अभिव्यक्ति प्रयुक्त भी की है तथापि धारा 2 में की गई घोषणा में ऐसे शब्दों के अभाव के परिणामस्वरूप यह निष्कर्ष नहीं निकलेगा कि ग्रहण किया गया नियंत्रण, सामान्य, पूर्ण और अनियंत्रित है तथा आई० डी० आर० अधिनियम के विभिन्न उपबन्धों में यथा उपबन्धित नियंत्रण नहीं है। यदि कोई कमी रह गई है तो उसे घोषणा करने की शक्ति पर यह प्रतिबन्ध लगा कर पूरा कर दिया गया है कि घोषणा विधि द्वारा ही की जाएगी। विधायी आशय का अनुमान सम्पूर्ण अधिनियम से लगाया जाना है न कि उसके भिन्न-भिन्न उपबन्धों की जांच-पड़ताल द्वारा। अतः यह अभिनिर्धारित करना युक्तियुक्त होगा कि संघ ने समय-समय पर यथा संशोधित आई० डी० आर० अधिनियम की धारा 2 में घोषणा के आधार पर जिस विस्तार तक

1980(4) eILR(PAT) SC 201

नियंत्रण ग्रहण किया है, वहां तक सूची 2 की प्रविष्टि 24 के अधीन घोषित उद्योग की बाबत आई० डी० आर० अधिनियम के नियंत्रण के क्षेत्र में अतिक्रमण करते हुए कोई विधान बनाने की राज्य विधानमण्डल की शक्ति छीन ली जाएगी। इस बात का स्पष्ट रूप से समर्थन **बैजनाथ केडिया वाले मामले**[1] द्वारा ही हो जाता है, जिसमें कि निस्संदेह रूप से खान और खनिज अधिनियम की धारा 2 में की गई घोषणा द्वारा संघ द्वारा ग्रहण किए गए नियंत्रण के प्रति निर्देश करते समय यह कहा गया था कि वह विस्तार जिस तक वह घोषणा विस्तारित होगी अवधारित करना संसद् का काम है और यह बात लोक हित से संगत होनी चाहिए और एक बार ऐसी घोषणा कर दिए जाने पर तथा विस्तार अधिकथित कर दिए जाने पर अधिकथित विस्तार तक विधान का विषय संसद् द्वारा विधायन का अनन्य विषय बन जाता है। यह कोई सामान्य नियंत्रण मात्र नहीं है अपितु संसद् द्वारा की गई घोषणा के अनुसरण में अधिनियमित आई० डी० आर० अधिनियम के उपबन्धों द्वारा संघ द्वारा ग्रहण किए गए नियंत्रण के विस्तार तक अर्थात् जहां तक आई० डी० आर० अधिनियम के उपबन्धों का विस्तार है वहां तक राज्य विधानमण्डल को ऐसे घोषित उद्योग की बाबत कोई विधान बनाने की शक्ति से वंचित कर दिया गया है।

12. प्रत्यर्थियों ने यह दलील देते हुए अपेक्षाकृत विधान की विधिमान्यता का प्रकथन किया है कि विधान के सही अर्थान्वयन और उसके उद्देश्य को उचित रूप से अभिनिश्चित करने पर यह प्रकट होता है कि यह अनुसूचित उपक्रमों के अर्जन के लिए विधान है और राज्य द्वारा विधान बना कर ऐसे अनुसूचित उपक्रमों को अर्जित करने की शक्ति सूची 3 की प्रविष्टि 42 से व्युत्पन्न होती है। अतः संविवाद इस प्रश्न के बारे में है कि क्या आक्षेपकृत विधान प्रविष्टि 24 में निर्दिष्ट किसी घोषित उद्योग की बाबत है या सूची 3 की प्रविष्टि 42 से व्युत्पन्न होने वाली सम्पत्ति के अर्जन और अधिग्रहण की शक्ति के प्रयोग में अनुसूचित उपक्रमों के अर्जन के लिए है। अपीलार्थियों ने यह दलील दी है कि आक्षेपकृत विधान के अधिनियमन के उद्देश्यों और कारणों के प्रति निर्देश यह दर्शित करेगा कि अनुसूचित उपक्रमों के स्वामियों ने गन्ना उत्पादकों और श्रमिकों के लिए गम्भीर समस्याएं उत्पन्न कर दी थीं जिनका उन क्षेत्रों की सामान्य अर्थ-व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा था जिनमें ये उपक्रम उपस्थित थे इसलिए यह विधान उपक्रमों को अर्जित करने के लिए और प्रतिकर का संदाय करने के लिए तथा साथ ही गन्ना उत्पादकों

[1] [1970] 3 उम० नि० प० = [1970] 3 एस० सी० आर० 100.

और श्रमिकों को उच्च प्राथमिकता देते हुए संदाय करने के लिए तथा पेराई के सीजन के लिए उपक्रमों को पुन: चालू करने के लिए अधिनियमित किया गया था। यह कहा गया था कि ये उपक्रमों के स्वामियों द्वारा किए जाने वाले विशुद्धत: प्रबन्धकीय कृत्य हैं और यदि आक्षेपकृत अधिनियम प्रमुखत: इन प्रबन्धकीय कृत्यों को अपने हाथ में लेने के लिए परिकल्पित और अधिनियमित किया गया था तो यह अधिनियम राज्य विधानमण्डल की विधायी क्षमता के बाहर होगा क्योंकि यह केवल संघ सरकार को घोषित उद्योग में कुप्रबन्ध के निवारण के लिए या उसके प्रबन्ध को ग्रहण करके उसे सुधारने के लिए उनके औद्योगिक उपक्रमों पर प्रभावशील नियंत्रण करने में सशक्त बनाने के लिए विनिर्दिष्ट रूप से अधिनियमित आई० डी० आर० अधिनियम के क्षेत्र में अतिक्रमण करता है।

13. जब विधायी क्षमता के अभाव के आधार पर किसी विधान की विधिमान्यता को चुनौती दी जाती है और यह अभिनिश्चित करना आवश्यक बन जाता है कि वह विधान तीनों सूचियों की किस प्रविष्टि के अन्तर्गत आता है तब न्यायालय ने तत्व और सार का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। यदि तत्वत: और सारत: कोई विधान किसी एक या दूसरी प्रविष्टि के अन्तर्गत आता है किन्तु उस विधान की विषयवस्तु का कोई एक भाग प्रसंगत: किसी अन्य सूची के अधीन की किसी प्रविष्टि में अतिक्रमण करता है या हस्तक्षेप करता है तो ऐसे प्रासंगिक अतिक्रमण के होते हुए भी समग्र रूप से वह अधिनियम विधिमान्य होगा। यह बात कई विनिश्चयों द्वारा सुस्थापित हो चुकी है। (**भारत संघ** बनाम **एस० एस० ढिल्लों**[1] और **केरल राज्य विद्युत बोर्ड** बनाम **इण्डियन एल्युमिनियम कम्पनी लिमिटेड**[2] देखिए)। **कर्नाटक राज्य और एक अन्य** बनाम **रंगनाथ रेड्डी और एक अन्य**[3] के मामले में इन विनिश्चयों के प्रति निर्देश करने के पश्चात् सांविधानिक न्यायपीठ का निर्णय देते हुए न्यायाधिपति ऊंटवालिया ने वस्तुत: यह कथित किया है कि अधिनियम के तत्व और सार को देखा जाना है और कोई प्रासंगिक अतिचार विधि को अविधिमान्य नहीं बना देगा। उस मामले में कर्नाटक राज्य द्वारा ठेका गाड़ियों के राष्ट्रीयकरण को अन्य बातों के साथ इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि वह कानून अविधिमान्य था क्योंकि वह अन्तर्राज्यिक व्यापार और वाणिज्य के विषय से सम्बन्धित विधान था। इस दलील का खण्डन करते हुए

---

[1] [1792] 1 उम० नि० प० 565=[1972] 2 एस० सी० आर० 33.

[2] [1976] 1 उम० नि० प० 1331=[1976] 1 एस० सी० आर० 552.

[3] [1978] 4 उम० नि० प० 324=[1978] 1 एस० सी० आर० 641.

न्यायालय ने एकमत से यह अभिनिर्धारित किया था कि स्वतः और सारतः आक्षेपकृत विधान ठेका गाड़ियों के अर्जन के लिए था न कि एक ऐसा अधिनियम था जो कि अन्तर्राज्यिक व्यापार और वाणिज्य के बारे में हो।

14. प्रारम्भ में सर्वप्रथम यह अभिनिश्चित करना आवश्यक है कि आक्षेपकृत विधान तत्वतः और सारतः किस विशिष्ट सूची की कौन सी प्रविष्टि के अन्तर्गत आता है। यदि वह सूची 2 की प्रविष्टि 24 से भिन्न किसी प्रविष्टि, जैसे कि सूची 3 की प्रविष्टि 42 से सम्बन्धित है, तो ठीक-ठीक यह अभिनिश्चित करना आवश्यक होगा कि क्या किसी तरह से वह संसद् द्वारा चीनी के उद्योग को अपने नियन्त्रण में लेने के लिए की गई घोषणा के, जैसी कि आई० डी० आर० अधिनियम के विभिन्न उपबन्धों से प्रकट होती है, क्षेत्र में हस्तक्षेप करता है।

15. अधिनियम की धारा 3 में नियत दिन से अनुसूचित उपक्रमों के निगम में निहित हो जाने का उपबन्ध किया गया है। धारा 4 में निहित होने के परिणामों का उपबन्ध किया गया है। धारा 5 प्रत्येक ऐसे व्यक्ति के लिए जिसके कब्जे या अभिरक्षा या नियन्त्रण में कोई सम्पत्ति या आस्ति, लेखाबही, रजिस्टर या उस उपक्रम का कोई अन्य दस्तावेज हो, तुरन्त ही उसे कलक्टर को दे देना बाध्यकर बनाती है। धारा 7 में अनुसूचित उपक्रमों के अर्जन के लिए प्रतिकर के ढंग के अवधारण और संदाय का उपबन्ध किया गया है। धारा 8 में यह उपबन्ध किया गया है कि दावों की पूर्ति उपक्रम के स्वामियों को संदेय प्रतिकर में से की जाएगी। धारा 9 में अर्जन के परिणामस्वरूप कुछ प्रतिभूत ऋणों के परिवर्जन का उपबन्ध किया गया है। धारा 11 में अपील का उपबन्ध किया गया है और धारा 12 में अधिनियम द्वारा सौंपे गए कृत्यों के पालन के लिए अधिकरण के गठन का उपबन्ध किया गया है। धारा 14 में अधिनियम के क्रियान्वयन से उत्पन्न होने वाले किसी विवाद की बाबत सिविल न्यायालयों की अधिकारिता को समाप्त करने का उपबन्ध किया गया है। धारा 16 अनुसूचित उपक्रमों के कर्मचारियों को संरक्षण प्रदान करती है। शेष उपबन्ध पारिणामिक धाराएं हैं। अधिनियम के सभी उपबन्धों की विस्तृत जांच निर्विवाद रूप से यह दर्शित करती है कि तत्वतः और सारतः आक्षेपकृत अधिनियम अनुसूचित उपक्रमों के अर्जन के लिए है और अनुसूचित उपक्रमों के स्वामित्व के निगम को अन्तरण द्वारा ऐसा अर्जन किसी भी तरह से आई० डी० आर० अधिनियम के उपबन्धों के विरुद्ध नहीं होगा या आई० डी० आर० अधिनियम के विभिन्न उपबन्धों के अधीन संघ द्वारा प्रयुक्त नियंत्रण

में हस्तक्षेप नहीं करेगा। वस्तुत: आई० डी० आर० अधिनियम मोटे तौर पर घोषित उद्योगों के औद्योगिक उपक्रमों के स्वामित्व के सम्बन्ध में नहीं है। मुख्य रूप से यह अधिनियम घोषित उद्योगों के विकास और विनियमन के सम्बन्ध में है। आई० डी० आर० अधिनियम की धारा 18-क और 18-कक के अधीन केन्द्रीय सरकार को कतिपय मामलों में औद्योगिक उपक्रमों के प्रबन्ध और नियन्त्रण को सीधे ही अपने हाथ में ले लेने की शक्ति प्राप्त है और आक्षेपकृत विधान के अधीन अनुसूचित उपक्रमों के अर्जन के पश्चात् भी धारा 18-क और 18-कक के अधीन केन्द्रीय सरकार की शक्ति अप्रभावित बनी रहेगी। धारा 18-क में भी किसी ऐसी कम्पनी का प्रबन्ध और नियंत्रण उच्च न्यायालय की अनुज्ञा से ग्रहण कर लेने का उपबन्ध किया गया है जो समापनाधीन हो और ऐसी स्थिति में केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त प्राधिकृत व्यक्ति धारा 18-चक की उपधारा (4) के अधीन शासकीय समापक समझा जाएगा। आई० डी० आर० अधिनियम के अध्याय 3-कग में अन्तर्विष्ट उपबंध केन्द्रीय सरकार को कतिपय परिस्थितियों में औद्योगिक उपक्रम के विक्रय का निदेश देने में और धारा 18चङ(7) में उपवर्णित स्थिति में उसे खरीदने का निदेश देने में समर्थ बनाता है। किन्तु इन शक्तियों का प्रयोग इस तथ्य पर विचार किए बिना भी किया जा सकता है कि सुसंगत समय पर उपक्रम का स्वामी कौन था। आई० डी० आर० अधिनियम का उपक्रम के प्रबन्धतंत्र पर स्वामी के नियंत्रण के विस्तार तक के सिवाय घोषित उद्योगों के औद्योगिक उपक्रमों के स्वामित्व से कोई सम्बन्ध नहीं है। स्वामी को किसी औद्योगिक उपक्रम के सम्बन्ध में धारा 3(च) में इस रूप में परिभाषित किया गया है कि इससे ऐसा व्यक्ति या प्राधिकारी अभिप्रेत है जो उपक्रम के क्रियाकलापों पर अन्तिम रूप से नियंत्रण रखता हो और जहां उक्त क्रियाकलाप किसी प्रबन्धक, प्रबन्ध निदेशक या प्रबन्ध अभिकर्ता को सौंपे गए हों वहां ऐसा प्रबन्धक, प्रबन्ध निदेशक या प्रबन्ध अभिकर्ता उस उपक्रम का स्वामी समझा जाएगा। स्वामित्व की संकल्पना की बाबत अधिनियमित यह 'धारणा विषयक उपबन्ध' स्पष्ट रूप से यह विधायी आशय दर्शित करता है कि आई० डी० आर० अधिनियम उसी व्यक्ति को स्वामी मानता है जिसका उपक्रम के क्रियाकलापों पर अन्तिम रूप से नियंत्रण हो और यदि वह अन्तिम नियंत्रण किसी प्रबन्धक को भी सौंपा गया है तो आई० डी० आर० अधिनियम के प्रयोजनों के लिए वह प्रबन्धक ही स्वामी होगा। उपबंधों के अनुसार ऐसा होना चाहिए क्योंकि आई० डी० आर० अधिनियम अनिवार्यत: घोषित उद्योगों के औद्योगिक उपक्रमों के प्रबन्ध को अपने नियंत्रण में ले लेने के सम्बन्ध में है। आक्षेपकृत

अधिनियम के अधीन अर्जन द्वारा और अनुसूचित उपक्रमों के निगम में निहित हो जाने के कारण भी अनुसूचित उपक्रम आई० डी० आर० अधिनियम के उपबंधों के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रयुक्त किए जाने वाले नियंत्रण के अधीन ही होंगे क्योंकि निगम स्वामी होगा और केन्द्रीय सरकार के प्राधिकार और अधिकारिता के प्रति उत्तरदायी होगा क्योंकि चीनी के घोषित उद्योग होने के कारण आई० डी० आर० अधिनियम के उपबन्ध अनुसूचित उपक्रमों को भी लागू होते रहेंगे तथा अनुसूचित उपक्रम आई० डी० आर० अधिनियम के अर्थान्तर्गत औद्योगिक उपक्रम हैं। यह दर्शित करने के लिए हमारे समक्ष आई० डी० आर० अधिनियम के किसी उपबंध के प्रति निर्देश नहीं किया गया था कि ऐसे उपबंध को क्रियान्वित करने या प्रवृत्त करने में आक्षेपकृत विधान कोई रुकावट डालेगा। अतः आक्षेपकृत विधान और आई० डी० आर० अधिनियम के उपबन्धों के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा ग्रहण किए जाने वाले नियन्त्रण के बीच कोई विरोध नहीं है तथा आक्षेपकृत विधान द्वारा आई० डी० आर० अधिनियम के क्षेत्र में कोई दूरस्थ अधिक्रमण भी नहीं होता है।

16. निवेदन का मुख्य सार यह था कि सूची 3 की प्रविष्टि 42 के अधीन अर्जन की शक्ति एक स्वतन्त्र शक्ति नहीं है अपितु यह विभिन्न सूचियों के विभिन्न विषयों की बाबत विधान बनाने की शक्ति की आनुषंगिक है और इसलिए जब संसद् द्वारा आई० डी० आर० अधिनियम की धारा 2 में अधिनियमित घोषणा द्वारा संघ घोषित उद्योग का नियंत्रण अपने हाथ में ले लेता है तब ऐसे नियंत्रण में अर्जित करने की शक्ति भी समाविष्ट होगी और इसलिए अनुसूचित उपक्रमों की सम्पत्ति को अर्जित करने के लिए विधान अधिनियमित करने की राज्य विधानमण्डल की शक्ति समाप्त हो जाएगी क्योंकि वह शक्ति नियंत्रण के अभिन्न अंग के रूप में संघ सरकार में निहित हो जाएगी। अतः संविवाद की मुख्य बात यह है कि क्या सूची 3 की प्रविष्टि 42 के अधीन सम्पत्ति अर्जन और अधिग्रहण की शक्ति स्वयं में एक स्वतन्त्र शक्ति है या यह उद्योग पर नियंत्रण की शक्ति का अभिन्न और अविभाज्य तत्त्व है।

17. तीन सुसंगत प्रविष्टियों से सम्बन्धित संविधान संशोधन प्रक्रिया अवलोकित की जा सकती है। संविधान (सप्तम संशोधन) अधिनियम 1956 के पूर्व, जो कि 1 नवम्बर, 1956 को प्रवृत्त हुआ था, सूची 1 की प्रविष्टि 33 इस प्रकार थी—

1980(4) eILR(PAT) SC 201

*"संघ के प्रयोजन के लिए सम्पत्ति का अर्जन या अधिग्रहण।"

इसी प्रकार सूची 2 की प्रविष्टि 36 इस प्रकार थी—

**"सूची 3 की प्रविष्टि 42 के उपबंधों के अधीन रहते हुए संघ के प्रयोजन से भिन्न प्रयोजन के लिए सम्पत्ति का अर्जन या अधिग्रहण।"

उस समय सूची 3 की प्रविष्टि 42 इस प्रकार थी—

***"वे सिद्धान्त जिन पर संघ के प्रयोजन के लिए या किसी राज्य के प्रयोजन के लिए या किसी अन्य लोक प्रयोजन के लिए अर्जित अथवा अधिगृहीत सम्पत्ति के लिए प्रतिकर अवधारित किया जाएगा और वह प्ररूप और रीति जिसमें ऐसा प्रतिकर दिया जाना है।"

18. संविधान (सप्तम संशोधन) अधिनियम द्वारा ये तीनों प्रविष्टियां निरसित कर दी गई थीं। सूची 1 की प्रविष्टि 33 और सूची 2 की प्रविष्टि 36 विलोपित कर दी गई थीं तथा सूची 3 में प्रविष्टि 42 के स्थान पर एक ही व्यापक प्रविष्टि प्रतिस्थापित कर दी गई थी जो कि इस प्रकार थी "सम्पत्ति का अर्जन और अधिग्रहण।" तदनुसार सम्पत्ति अर्जित करने की शक्ति का प्रयोग संघ और राज्यों, दोनों द्वारा ही किया जा सकता है। यद्यपि सूची 1 में प्रविष्टि 33 और सूची 2 में प्रविष्टि 36 के विलोपित किए जाने से पूर्व सम्भवत: यह तर्क दिया जा सकता था कि चूंकि सम्पत्ति के अर्जन की शक्ति संघ और राज्यों दोनों को ही प्रदत्त की गई है जिसका प्रयोग संघ के प्रयोजन के लिए या राज्य के प्रयोजन के लिए किया जाना है इसलिए वह तीनों सूचियों की विभिन्न प्रविष्टियों से उत्पन्न होने वाली किसी अन्य विधायी शक्ति की आनुषंगिक शक्ति के रूप में न कि एक स्वतन्त्र शक्ति के रूप में

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

"Acquisition or requisitioning or property for the purpose of the Union."

**"Acquisition or requisitioning of property except for the purpose of the Union subject to the provisions of entry 42 of List III."

***"Principles on which compensation for property acquired or requisitioned for the purposes of the Union or of a State or for any other purpose is to be determined, and the form and the manner in which such compensation is to be given."

1980(4) eILR(PAT) SC 20

प्रयुक्त की जा सकती है किन्तु सूची 1 में प्रविष्टि 33 और सूची 2 में प्रविष्टि 36 के विलोपित कर दिए जाने के पश्चात् तथा सूची 3 में एक व्यापक प्रविष्टि के प्रतिस्थापित कर दिए जाने के पश्चात् अब विश्वास के साथ यह तर्क नहीं दिया जा सकता है कि सम्पत्ति के अर्जन और अधिग्रहण की शक्ति किसी अन्य शक्ति की आनुषंगिक है। यह एक स्वतन्त्र शक्ति है जिसका एक विनिर्दिष्ट प्रविष्टि में उपबन्ध किया गया है। अतः संघ और राज्य दोनों को ही सम्पत्ति के अर्जन और अधिग्रहण की शक्ति प्राप्त होगी। यह स्थिति **रुस्तम कावसजी कूपर** बनाम **भारत संघ**[1] के मामले में बहुमत के विनिश्चय से निर्विवाद रूप से सिद्ध हो जाती है जिसमें कि दस न्यायाधीशों के बहुमत का निर्णय देते हुए न्यायाधिपति शाह ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया था—

> "सम्पत्ति के अर्जन के लिए विधान बनाने की शक्ति का प्रयोग केवल सूची 3 की प्रविष्टि 42 के अधीन ही किया जा सकता है न कि तीनों सूचियों की किसी प्रविष्टि में विधान के किसी विनिर्दिष्ट शीर्ष की बाबत विधान बनाने की शक्ति की प्रसंगति के रूप में।"

यह निष्कर्ष निकालते समय **राजामुन्दरी इलैक्ट्रिक सप्लाई कारपोरेशन लिमिटेड** बनाम **आन्ध्र प्रदेश राज्य**[2] के मामले का अवलम्ब लिया गया था। तथापि यह तर्क दिया गया था कि **आर० सी० कूपर वाले मामले**[1] में न्यायाधिपति शाह द्वारा **राजामुन्दरी इलैक्ट्रिक सप्लाई कारपोरेशन वाले मामले**[2] से प्रतिपादित सिद्धान्त का पूर्वकथित मामले में अभिव्यक्त मत से समर्थन नहीं होता है। **राजामुन्दरी इलैक्ट्रिक सप्लाई कारपोरेशन वाले मामले**[2] में मद्रास इलैक्ट्रिक सप्लाई अण्डरटेकिंग्ज (एक्विजीशन) ऐक्ट, 1949 को इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि मद्रास विधानमण्डल उस विधान को अधिनियमित करने के लिए सक्षम नहीं था क्योंकि सुसंगत समय पर भारत शासन अधिनियम, 1935 में किसी वाणिज्यिक या औद्योगिक उपक्रम के अनिवार्य अर्जन के सम्बन्ध में कोई प्रविष्टि नहीं थी। उच्च न्यायालय में यह आक्षेप असफल रहा था किन्तु अपील किए जाने पर इस न्यायालय की सांविधानिक न्यायपीठ ने वह आक्षेप स्वीकार कर लिया था। यह स्मरण रखना होगा कि उस मामले में आक्षेपकृत विधान संविधान के पहले का विधान था जो कि उस समय भारत शासन अधिनियम, 1935 द्वारा शासित होता था। यह आक्षेप किया गया था कि

---

[1] [1974] 3 उम० नि० प० 1045=[1970] 3 एस० सी० आर० 530.

[2] [1954] एस० सी० आर० 779.

राज्य विधानमण्डल को किसी विद्युत उपक्रम के अर्जन के लिए विधान अधिनियमित करने की शक्ति प्राप्त नहीं है। राज्य की ओर से अधिनियम का इस आधार पर समर्थन करने का प्रयास किया गया था कि वह अधिनियम तत्वतः और सारतः समवर्ती सूची की प्रविष्टि 31 के अधीन विद्युत की बाबत विधि था और इसलिए राज्य विधानमण्डल उसे अधिनियमित करने के लिए सक्षम था। उस अधिनियम की संवीक्षा करने के पश्चात् इस न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि तत्वतः और सारतः अधिनियम विद्युत उपक्रम का अर्जन करने के लिए उपबन्ध था इसलिए राज्य विधानमण्डल उसे अधिनियमित करने के लिए सक्षम नहीं था। उस मामले में मद्रास के महाधिवक्ता ने आक्षेपकृत विधान की व्यावृत्ति के प्रयास में सांविधानिक न्यायपीठ के समक्ष यह तर्क दिया था "भारत शासन अधिनियम, 1935 की सप्तम अनुसूची की विधायी सूचियों की प्रत्येक प्रविष्टि में उस प्रत्येक प्रविष्टि की विषयवस्तु से आनुषंगिक या प्रासंगिक विषय की बाबत विधि बनाने की शक्ति अन्तर्निहित है। उन्होंने आगे यह तर्क दिया कि सूची की प्रत्येक प्रविष्टि में प्रत्येक प्रविष्टि के अधीन विधि बनाते समय किसी सम्पत्ति, भूमि या किसी वाणिज्यिक अथवा औद्योगिक उपक्रम के अनिवार्य अर्जन का उपबन्ध करने की शक्ति अन्तर्निहित है। इस तर्क का **बिहार राज्य बनाम महाराजाधिराज सर कामेश्वर सिंह**[1] वाले मामले में सांविधानिक न्यायपीठ के पूर्वतर विनिश्चय का अवलम्ब करते हुए खण्डन किया गया था। मद्रास के महाधिवक्ता की इस दलील का खण्डन करने का अर्थ यह होगा कि सम्पत्ति के अर्जन की शक्ति प्रत्येक प्रविष्टि की विषयवस्तु से आनुषंगिक या प्रासंगिक नहीं है अपितु सारतः वह एक स्वतन्त्र शक्ति है। यह बात **महाराजाधिराज सर कामेश्वर सिंह वाले मामले**[1] से भी स्पष्ट हो जाती है जिसमें कि न्यायाधिपति दास ने अपने समस्त निर्णय में राज्य की ओर से उपसंजात होने वाले विद्वान महा न्यायवादी के इस तर्क का खण्डन किया था कि बिहार लैण्ड रिफार्म्स ऐक्ट सूची 2 की प्रविष्टि 18 में उल्लिखित विषयों की बाबत था न कि सूची 2 की प्रविष्टि 36 में उल्लिखित विषयों की बाबत। सूची 2 की प्रविष्टि 18 इस प्रकार है "भूमि और भूधृति आदि।" यह दलील दी गई थी कि आक्षेपकृत विधान भूमि और भूधृति के विषय पर था और उसके अन्तर्गत भूमि का अर्जन भी आएगा। इस दलील का खण्डन करते हुए यह अभिनिर्धारित किया गया था कि उस दशा में सूची 2 की प्रविष्टि 36 निरर्थक हो जाएगी। उस मामले में की गई महत्वपूर्ण मताभिव्यक्ति इस प्रकार है—

---

1 [1952] एस० सी० आर० 889.

1980(4) eILR(PAT) SC 20

"मेरे विचार में सूची 2 की प्रविष्टि 18 और प्रविष्टि 36 के अधीन दोनों विधायी शीर्षों में से प्रत्येक का अर्थ और अभिप्राय निकालते समय पूर्वकथित को ऐसे विधायी प्रवर्ग या शीर्ष के रूप में पढ़ा जाना होगा जिसमें भूमि और भूधृतियां समाविष्ट हैं तथा भूमि के अर्जन से, जिसे सूची 2 की प्रविष्टि 36 के अन्तर्गत आने वाला विषय समझा जाना चाहिए, उससे सम्बन्धित अन्य सब बातें समाविष्ट हैं।"

19. इस प्रकार स्पष्ट रूप से यह प्रकट होता है कि **कूपर वाले मामले**[1] से ऊपर उद्धृत इस मताभिव्यक्ति को कि सम्पत्ति के अर्जन के लिए विधि बनाने की शक्ति का प्रयोग केवल सूची 3 की प्रविष्टि 42 के अधीन किया जा सकता है न कि तीनों सूचियों में से किसी में विधान के किसी विनिर्दिष्ट शीर्ष की बाबत विधान बनाने की शक्ति की प्रासंगिक शक्ति के रूप में किया जा सकता है, **राजामुन्दरी इलैक्ट्रिक सप्लाई कारपोरेशन वाले मामले**[2] और **महाराजधिराज सर कामेश्वर सिंह वाले मामले**[3] से समर्थन मिल जाता है।

20. तथापि यह तर्क दिया गया था कि वह प्रतिपादना **पश्चिमी बंगाल राज्य** बनाम **भारत संघ**[4] वाले मामले में छह न्यायाधीशों की सांविधानिक न्यायपीठ के विनिश्चय के विपरीत है। उस मामले में पश्चिमी बंगाल राज्य ने कोयला धारक क्षेत्र (अर्जन और विनियमन) अधिनियम, 1957 की सांविधानिक विधिमान्यता को इस आधार पर चुनौती देते हुए भारत संघ के विरुद्ध एक वाद फाइल किया था कि जहां तक वह अधिनियम राज्य में निहित या राज्य के स्वामित्वाधीन भूमियों को लागू होता है वह संसद् की विधायी सक्षमता के परे हैं। पश्चिमी बंगाल राज्य के स्वामित्वाधीन या उसके कब्जे में की कोयला धारक भूमि के अर्जन की शक्ति संघ द्वारा क्रमश: प्रविष्टि 52 और 54 के अधीन की विधायी शक्ति के प्रयोग में अधिनियमित आई० डी० आर० अधिनियम और खान और खनिज अधिनियम की धारा 2 में की गई घोषणा के अनुसरण में अर्जित नियंत्रण के अभिन्न तत्व के रूप में दावाकृत शक्तियों में से एक थी क्योंकि कोयला एक घोषित उद्योग और साथ ही विनिर्दिष्ट खनिज दोनों ही था। इस दलील का खण्डन करने के लिए कि संघ को राज्य में निहित सम्पत्ति अर्जित करने की शक्ति नहीं है क्योंकि वह राज्य

---

1 [1974] 3 उम० नि० प० 1045=[1970] 3 एस० सी० आर० 530.

2 [1954] एस० सी० आर० 779.

3 [1952] एस० सी० आर० 889.

4 [1964] 1 एस० सी० आर० 371.

1980(4) eILR(HAT) SC 201

स्वयं ही एक प्रभुतासम्पन्न अधिकारी है, उक्त दलील को अंशतः स्वीकार कर लिया गया था। इस दलील का खण्डन किया गया था कि राज्य की सम्पत्ति सूची 3 की प्रविष्टि 42 के अधीन संघ द्वारा अर्जित नहीं की जा सकती है। यह निष्कर्ष निकालते समय हमारे समक्ष पेश की गई इस दूसरी दलील को नामंजूर कर दिया गया था कि यदि अर्जन की शक्ति को संघ तथा राज्यों दोनों की स्वतंत्र शक्ति माना गया और एक ही सम्पत्ति की बाबत संघ और राज्य दोनों ही उसका प्रयोग कर सकते हैं तो इसके परिणामस्वरूप ऐसी भ्रांति उत्पन्न हो जाएगी जिसका कोई अंत नहीं होगा। यह तर्क देते हुए सम्भाव्य सांविधानिक गतिरोध की ओर ध्यान आकृष्ट कराया गया था कि हो सकता है सूची 3 की प्रविष्टि 42 के अधीन शक्ति के प्रयोग में राज्य किसी घोषित उद्योग के औद्योगिक उपक्रम की सम्पत्ति को अर्जित कर ले और प्रविष्टि 52 में किसी उद्योग की बाबत यथा अनुध्यात घोषणा के अनुसरण में नियंत्रण ग्रहण करने के पश्चात् संघ भी ऐसी ही शक्ति का प्रयोग कर ले तथा इस चक्र को सामंजस्यपूर्ण अर्थान्वयन द्वारा संघ और राज्यों के बीच शक्तियों के सामंजस्यपूर्ण विभाजन द्वारा दूर किया जाना है। ऐसी स्थिति व्यावहारिक सम्भाव्यता के क्षेत्र से परे है। इस निरर्थक आशंका का **पश्चिमी बंगाल राज्य वाले मामले**[1] में बड़े प्रभावपूर्ण ढंग से उत्तर दे दिया गया है और हम उससे अधिक कुछ नहीं कह सकते हैं। सुसंगत मताभिव्यक्ति को उद्धृत किया जा सकता है—

> "संशोधन के पश्चात् से सम्पत्ति अर्जित और उद्गृहीत करने की शक्ति का प्रयोग संघ और राज्य दोनों द्वारा एक साथ किया जा सकता है किन्तु उस कारण से शक्ति के परस्पर विरोधी प्रयोग की परिकल्पना नहीं की जा सकती है। अनुच्छेद 31(2) जो कि सब सम्पत्तियों के अर्जन के सम्बन्ध में है, दो शर्तों के पूरा किए जाने की अपेक्षा करता है—(1) अर्जन या उद्ग्रहण लोक प्रयोजन के लिए ही होना चाहिए, (2) जिस विधि के अधीन सम्पत्ति अर्जित या उद्गृहीत की जाती है उसमें तद्द्वारा नियत किए गए या तद्द्वारा विनिर्दिष्ट सिद्धान्तों के आधार पर प्रतिकर के संदाय का उपबन्ध अवश्य ही किया जाना चाहिए। अनुच्छेद 31 के खण्ड (3) के अनुसार राज्य के विधानमण्डल द्वारा बनाई गई कोई ऐसी विधि जैसी कि खण्ड (2) में निर्दिष्ट है, तब तक प्रभावी नहीं होगी जब तक कि ऐसी विधि को राष्ट्रपति के विचार के लिए रक्षित किए जाने के पश्चात् उसकी

---

[1] [1964] 1 एस० सी० आर० 371.

अनुमति न मिल गई हो। राष्ट्रपति संघ मन्त्रालय की परामर्श से अपने प्राधिकार का प्रयोग करता है इसलिए एक ही विषयवस्तु की बाबत संघ और राज्य द्वारा एक साथ या संघ द्वारा बनाए गए विधान के आधार पर राज्य द्वारा अर्जन की शक्ति के प्रभावशील प्रयोग के बीच विरोध की व्यावहारिक रूप से, अधिसम्भाव्यता के तौर पर भी, परिकल्पना नहीं की जा सकती है। अनुच्छेद 254 भी ऐसे विरोधी विधान की अधिसम्भाव्यता का खण्डन करता है। उस अनुच्छेद के खण्ड (1) के अनुसार यदि किसी राज्य के विधानमण्डल द्वारा निर्मित विधि संसद द्वारा सक्षम रूप से बनाई गई किसी विधि के किसी उपबन्ध के विरुद्ध है तो राज्य की विधि खण्ड (2) के उपबन्धों के अधीन रहते हुए शून्य होगी और खण्ड (2) में समवर्ती सूची के विषयों पर बनाई गई किसी राज्य की विधि की उस दशा में परिसीमित विधिमान्यता को मान्यता दी गई है जब कि वह विधि संसद् द्वारा बनाई गई किसी विद्यमान या भूतपूर्व विधि के विरुद्ध है और वह विधि राष्ट्रपति के विचार के लिए रक्षित रखी गई है और उसे राष्ट्रपति की अनुमति मिल गई है। परन्तुक द्वारा ऐसी परिसीमित विधि के निरसन का प्राधिकार भी संसद् के लिए रक्षित रखा गया है। संघ के प्रयोजनों के लिए राज्य की सम्पत्ति के अर्जन के लिए संसद् द्वारा अधिनियमित विधि को अकृत करने के लिए आशयित राज्य के किसी विधान को राष्ट्रपति द्वारा अनुमति प्रदान किए जाने की व्यावहारिक अधिसम्भाव्यता नहीं है।"

अतः यह दलील कि यदि सूची 3 प्रविष्टि 42 में अर्जन या उद्ग्रहण की शक्ति को ऐसी स्वतंत्र शक्ति माना गया जो सूची 1 की प्रविष्टि 52 द्वारा अनुध्यात घोषणा के अनुसरण में संघ द्वारा ग्रहण किए गए नियंत्रण से पूर्णतया बाहर होती है तो इससे किसी प्रकार का कोई सांविधानिक गतिरोध उत्पन्न हो जाएगा, वास्तविक के बजाय काल्पनिक अधिक है। इसके अलावा बहुमत के निर्णय में न्यायाधिपति सुब्बाराव ने इस संदर्भ में यह कहा था —

"सूची 1 की प्रविष्टि 52 के अधीन कोई घोषणा निस्संदेह संसद् को किसी उद्योग की बाबत विधि बनाने में समर्थ बना देगी अर्थात् संसद किसी विद्यमान उद्योग या ऐसे उद्योग की बाबत जो तत्पश्चात् प्रारम्भ किया जाए विधि बना सकती है। इसी प्रकार ऐसी घोषणा के पूर्व राज्य विधानमण्डल सूची 2 की प्रविष्टि 24 के आधार पर ऐसे उद्योग की बाबत विधि बना सकता था किन्तु न तो सूची 2

की प्रविष्टि 24 और न ही सूची 1 की प्रविष्टि 52 घोषणा के पूर्व राज्य विधानमंडल को या ऐसी घोषणा के पश्चात् संसद को भूमियों के अर्जन के लिए विधि बनाने के लिए सशक्त करती है। यदि घोषणा के पूर्व राज्य विधानमण्डल या घोषणा के पश्चात् संसद् भूमि को अर्जित करना चाहें तो वे केवल सूची 3 की प्रविष्टि 42 के आधार पर ही विधि बनाने के लिए अग्रसर हो सकते हैं।"

21. तथापि यह तर्क देने के लिए कि अर्जन की शक्ति संघ द्वारा ग्रहण किए गए नियंत्रण का अभिन्न और अविभाज्य तत्व है **पश्चिमी बंगाल वाले मामले**[1] के निम्नलिखित अवतरण का अवलम्ब लिया गया था—

"सूची 1 की प्रविष्टि 54 के अधीन अपेक्षित घोषणाएं करके संसद ने खानें और खनिजों को विनियमित करने की शक्ति अपने हाथ में ले ली थी और उसके द्वारा उसने उन सभी अभिकरणों को जो संघ के नियंत्रण के अधीन नहीं हैं, खानों में खुदाई करने के प्राधिकार से वंचित करने की शक्ति अपने हाथ में ले ली थी। यह कल्पना करना कठिन है कि संविधान के निर्माताओं ने, संघ के नियंत्रण के अधीन खानों और खनिजों में खुदाई करने की अनन्य शक्ति प्रदत्त करने का आशय रखते हुए भी उन राज्यों में जिनमें खनिज मौजूद हैं, निहित भूमि को अनिवार्य रूप से अर्जित करने की बात को असम्भव बनाकर उस शक्ति के प्रभावी प्रयोग को रोक दिया। यदि ऐसी दलील स्वीकार कर ली जाए तो उस शक्ति का प्रयोग, प्रविष्टि 54 के अधीन अधिसूचना जारी करके विनियमन और नियंत्रण को अपने हाथ में लेने की शक्ति के प्रयोग पर निर्भर न करके उस राज्य क्षेत्र में के राज्य की इच्छा पर निर्भर होगा जिसमें वह भूमि स्थित है जिसमें खनिज का उत्पादन होता है। संघ के नियंत्रण के अधीन खानों और खनिजों के विनियमन और विकास के लिए विधान बनाने की शक्ति के अन्तर्गत आवश्यक विवक्षा द्वारा खानों और खनिजों को अर्जित करने की शक्ति भी आती है। राज्यों में निहित सम्पत्ति के अर्जन के लिए विधान बनाने की शक्ति से, इसी कारण से, संसद् को उस दशा में वंचित नहीं किया जा सकता, यदि उसका प्रयोग अनुच्छेद 31 द्वारा प्रदत्त संरक्षा के साथ सुसंगत रूप से किया जाता है।"

यदि इस मताभिव्यक्ति को उचित रूप से समझा जाए तो यह इस दलील के संदर्भ में है कि राज्य की सम्पत्ति को सर्वोपरि आधिपत्य की शक्ति के

---

1 [1964] 1 एस० सी० आर० 371.

अयध्धीन नहीं किया जा सकता और इसलिए संघ को उसे अनिवार्य रूप से अर्जित करने की कोई शक्ति प्राप्त नहीं होती है। अतः इस प्रश्न पर **कूपर वाले मामले**[1] तथा **पश्चिमी बंगाल वाले मामले**[2] में कोई परस्पर विरोध नहीं है कि अर्जन की शक्ति सूची 3 की प्रविष्टि 42 में निर्दिष्ट एक स्वतंत्र शक्ति है, तथापि यदि इस प्रश्न पर **पश्चिमी बंगाल**[2] और **कूपर वाले मामले**[1] के बीच कोई विरोध हो भी तो **कूपर वाले मामले**[1] में एक पश्चात्वर्ती बृहतर सांविधानिक न्यायपीठ का निर्णय विवक्षित रूप से विरोध की सीमा तक पूर्ववर्ती निर्णय को उलट देगा।

22. इसके विपरीत इस प्रतिपादना के लिए काफी अधिक नजीरें हैं कि घोषणा करने वाले कानून में उपदर्शित विस्तार तक घोषणा के अनुसरण में संघ द्वारा ग्रहण किए गए नियंत्रण के अन्तर्गत उस दशा में अर्जन की शक्ति समाविष्ट नहीं होती है जब कि वह विनिर्दिष्ट रूप से उपबन्धित न की गई हो। **कन्नन देवन हिल्स प्रोड्यूस कम्पनी लिमिटेड** बनाम **केरल राज्य और एक अन्य**[3] के मामले में कन्नन देवन हिल्स (रिजम्पशन ऑफ लैंड्स) ऐक्ट, 1971 की सांविधानिक विधिमान्यता को इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि केरल राज्य का विधानमण्डल उस विधान को अधिनियमित करने के लिए विधायी रूप से सक्षम नहीं था। यह तर्क दिया गया था कि टी ऐक्ट, 1853 की धारा 2 में की गई घोषणा की दृष्टि में रखते हुए चाय एक नियंत्रित उद्योग था और इसलिए राज्य विधानमण्डल को उस उद्योग के सम्बन्ध में कोई कार्यवाही करने की कोई शक्ति नहीं थी। आगे यह दलील भी दी गई थी कि चाय बागान के लिए विस्तृत भूमि अपेक्षित थी और आक्षेपकृत विधान द्वारा भूमि के ग्रहण का संघ द्वारा अपने हाथ में लिए गए नियंत्रण पर प्रत्यक्ष और प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा और इसलिए राज्य विधानमण्डल आक्षेपकृत विधान को अधिनियमित करने के लिए अक्षम था। यह अभिनिर्धारित करते हुए इस दलील का खण्डन किया गया था कि आक्षेपकृत विधान तत्वतः और सारतः सूची 3 की प्रविष्टि 42 के साथ पठित सूची 2 की प्रविष्टि 18 के अधीन आता था। यह निष्कर्ष निकालते समय न्यायालय ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया—

> "हमें यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि राज्य को सूची 2 की प्रविष्टि 18 और सूची 3 की प्रविष्टि 42 पर विधान बनाने की विधायी सक्षमता है। इस शक्ति का इस आधार पर इनकार नहीं

---

[1] [1974] 3 उम० नि० प० 1045=[1970] 3 एस० सी० आर० 530.

[2] [1964] 1 एस० सी० आर० 371.

[3] [1972] 3 उम० नि० प० 376=[1973] 1 एस० सी० आर० 356.

किया जा सकता कि इसका सूची 1 की प्रविष्टि 52 के अधीन नियंत्रित उद्योग पर प्रभाव पड़ता है। प्रभाव वही चीज नहीं है जो विषयवस्तु है। यदि अन्यथा विधिमान्य राज्य ऐक्ट का सूची 1 के किसी विषय पर प्रभाव होता है तो उसका सूची 2 या सूची 3 की किसी प्रविष्टि के सम्बन्ध में विधान होना समाप्त नहीं हो जाता। ऐसा प्रतीत होता है कि धारा 4 और 5 का उद्देश्य राज्य को वे सभी भूमियां अर्जित करने के लिए समर्थ बनाना है जो धारा 4(1) के खण्ड (क), (ख) और (ग) के अन्तर्गत नहीं आती हैं। ये उपबन्ध वस्तुतः अर्जन की शक्ति के प्रयोग के आनुषंगी हैं। राज्य को यह अभिनिश्चित करने की शक्ति से वंचित नहीं किया जा सकता कि लोक हित में किस भूमि का अर्जन किया जाना चाहिए।"

23. इस निष्कर्ष का **कनाडियन पेसिफिक रेलवे कम्पनी बनाम अटर्नी जनरल**[1] के मामले में प्रिवी काउन्सिल के विनिश्चय के प्रति निर्देश से समर्थन कराने का प्रयास किया गया था जिसमें यह मत अभिव्यक्त किया गया है—

"अपीलार्थी केनेडियन पैसिफिक रेलवे कम्पनी ने, जो ब्रिटिश कोलम्बिया में विक्टोरिया में एम्प्रैस होटल का स्वामी है और उसका प्रबन्ध करती है, इस बात से इनकार नहीं किया है कि कार्य के समय का विनियमन ब्रिटिश नार्थ अमरीका ऐक्ट, 1867 की धारा 92 के शीर्षक 13 के अधीन 'प्रान्त में सम्पत्ति और सिविल अधिकारों' का साधारण विषय है और तदनुसार वह प्रान्तीय विधानमण्डल की विधायी सक्षमता के भीतर है। उसने अन्य बातों के साथ-साथ यह दलील दी कि कम्पनी के क्रियाकलाप कनाडा की राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के इतने व्यापक और महत्वपूर्ण भाग बन गए हैं कि डोमिनियन पार्लियामेण्ट, 1867 के ऐक्ट की धारा 91 के प्रथम भाग द्वारा प्रदत्त साधारण शक्तियों के अधीन कम्पनी के सभी मामलों को विनियमित करने के लिए हकदार थी, वहां भी जहां ऐसे विषय पर विधान करना भी अन्तर्वलित है जो धारा 92 द्वारा प्रान्तीय विधानमण्डलों के लिए अनन्य रूप से आरक्षित है।"

24. अतः विश्वास के साथ यह कहा जा सकता है कि सूची 2 की प्रविष्टि 24 के अधीन राज्यों की विधायी शक्ति उसी सीमा तक समाप्त हो जाती है जिस तक कि किसी घोषित उद्योग की बाबत संसद् द्वारा की गई घोषणा के अनुसरण में, जो कि विधायी अधिनियमिति द्वारा ही की गई

---

[1] [1950] ए० सी० 122.

1980(4) eILR(PAT) SC 201

हो, संघ द्वारा नियंत्रण अपने हाथ में ले लिया जाता है और ऐसी अधिनियमिति का क्षेत्र ही राज्य की शक्ति की कांट-छांट का विस्तार होता है। शक्ति की ऐसी कांट-छांट के अधीन रहते हुए शेष क्षेत्र पर राज्य विधानमण्डल को किसी भी तरह से संघ के अधिनियम के क्षेत्र में अधिक्रमण किए बिना किसी घोषित उद्योग की बाबत विधान बनाने की शक्ति होगी। राज्य विधानमण्डल जो कि अन्यथा सूची 2 की प्रविष्टि 24 के अधीन किसी उद्योग के बारे में कार्यवाही करने के लिए सक्षम होता है, सूची 3 और सूची 2 में उपवर्णित विभिन्न शीर्षों के अधीन विधान बनाने में उसे समर्थ करने वाली अन्य शक्तियों के प्रयोग में भी उस उद्योग के सम्बन्ध में कार्यवाही कर सकता है और राज्य को उस शक्ति से वंचित नहीं किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में **चानन मल वाले मामले**[1] के प्रति निर्देश करना लाभप्रद होगा। उस मामले में हरियाण मिनरल्स (वैस्टिंग ऑफ राइट्स) ऐक्ट, 1973 की सांविधानिक विधिमान्यता को इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि वह अधिनियम और उसके अधीन जारी की गई अधिसूचनाएं संसद् द्वारा सूची 1 की प्रविष्टि 54 में यथा अनुध्यात घोषणा करने के पश्चात् बनाए गए खान और खनिज अधिनियम के विरुद्ध हैं। चुनौती यह दी गई थी कि राज्य विधानमण्डल सूची 1 की प्रविष्टि 54 के अधीन की गई घोषणा और संसद् द्वारा 1957 के अधिनियम 67 (खान और खनिज अधिनियम) के अधिनियमन को दृष्टि में रखते हुए सूची 2 की प्रविष्टि 23 के अधीन खान और खनिज विषय पर विधान बनाने के लिए अक्षम था। आक्षेपकृत अधिनियम और उसके अधीन जारी की गई अधिसूचनाओं द्वारा हरियाणा राज्य सरकार का तात्पर्य अधिसूचना से संलग्न अनुसूची में वर्णित भूमि में शोरे, जो कि एक गौण खनिज है, के अधिकार अर्जित करना था और दूसरी आक्षेपकृत अधिसूचना द्वारा राज्य सरकार ने आम जनता के लिए यह घोषित किया था कि उसमें उल्लिखित हरियाणा राज्य के कुछ शोराधारक क्षेत्र उसमें दी गई तारीखों को नीलाम किए जाएंगे। विधायी अक्षमता की बाबत दलील का खण्डन करते हुए यह मत अभिव्यक्त किया गया था कि यह देखना कठिन है कि अर्जन का क्षेत्र किसी केन्द्रीय अधिनियम के अन्तर्गत संसद् द्वारा किसी राज्य में ऐसी भूमि अर्जित करने के लिए विधान बनाने के पूर्व ही उसी प्रकार कैसे आ सकता है जिस प्रकार कि **पश्चिमी बंगाल वाले मामले**[2] में अभिनिर्धारित किया गया है। कम से कम जब तक संसद् ने ऐसा विधान न बना दिया हो जैसा कि उस कानून द्वारा किया गया दर्शित होता था जिस पर कि **पश्चिमी बंगाल वाले मामले**[1]

[1] [1977] 1 उम० नि० प० 966=[1976] 3 एस० सी० आर० 688.

[2] [1964] 1 एस० सी० आर० 371.

में इस न्यायालय ने विचार किया था। तब तक ऐसा क्षेत्र सूची 3 की प्रविष्टि 42 के अभिव्यक्त उपबन्धों के अन्तर्गत आता है और राज्य विधान-मण्डल उस पर विधान बनाने के लिए स्वतन्त्र होता है। आगे यह मत अभिव्यक्त किया गया था—

> "इस पक्षकथन को कायम रखना कठिन मालूम होता है कि केन्द्रीय अधिनियम के उपबन्ध उस भूमि के जिसमें खनिज भण्डार पाए जाते हैं, स्वामित्व की मात्र तब्दीली के कारण वस्तुतः असाध्य हो जाएंगे। हमें हरियाणा अधिनियम के स्वरूप पर उसके उपबन्धों के सार और प्रभाव के द्वारा ही विचार करना होगा न कि मात्र उस प्रयोजन के द्वारा जो कि उसके कारणों और उद्देश्य के कथन में बताया गया हो। कारणों के ऐसे कथन उस समय सुसंगत होते हैं जब कि किसी अधिनियमिति का उद्देश्य और प्रयोजन विवादगत हो या अनिश्चित हो, वे उस प्रभाव का अध्यारोहण कभी भी नहीं कर सकते जो कि उसके मुख्य उपबन्धों की अभिव्यक्त और असंदिग्ध भाषा का तर्कसंगत परिणाम हो। ऐसा प्रभाव आशय का सर्वाधिक अच्छा साक्ष्य होता है। उद्देश्यों और कारणों का कथन कानून का भाग नहीं होता है और इसी कारण से वह उस मामले में सुसंगत नहीं होता है जिसमें अधिनियम के प्रभावी भागों की भाषा में किसी भी प्रकार के संदेह की गुंजाइश नहीं रहती है, क्योंकि हरियाणा अधिनियम में कोई भी संदेह नहीं है कि विधायकों का क्या अभिप्राय है। यहां पर इस सम्बन्ध में कोई भी विवाद नहीं है कि हरियाणा अधिनियम का उद्देश्य और प्रभाव 'भूमि' में खनिज भण्डारों के स्वत्वधारी-अधिकारों को अर्जित करना था।"

25. इस प्रकार कई विनिश्चय हैं जो स्पष्ट रूप से इस प्रतिपादना को स्थापित करते हैं कि सम्पत्ति के अर्जन के लिए विधान बनाने की शक्ति एक स्वतन्त्र और पृथक् शक्ति है और उसका प्रयोग केवल सूची 3 की प्रविष्टि 42 के अधीन ही किया जा सकता है न कि तीनों सूचियों की किसी अन्य प्रविष्टि में विधान के किसी विनिर्दिष्ट शीर्ष की बाबत विधान बनाने की शक्ति की आनुषंगिक शक्ति के रूप में। सम्पत्ति के अर्जन के लिए विधान बनाने की राज्य विधानमण्डल की यह शक्ति उस विस्तार तक के सिवाय अप्रभावित और अनियन्त्रित बनी रहती है जिस तक कि सूची 1 की प्रविष्टि 52 में यथा अनुध्यात घोषणा द्वारा किसी उद्योग का नियन्त्रण ले लिया जाता है तथा अर्जन की अतिरिक्त शक्ति विनिर्दिष्ट विधान द्वारा ले ली जाती है।

1980(4) eILR(PAT) SC 201

26. जैसा कि पहले कहा गया है, तत्वत: और सारतः आक्षेपकृत विधान अनुसूचित उपक्रमों के अर्जन के लिए है और वह अर्जन का क्षेत्र आई० डी० आर० अधिनियम के अन्तर्गत नहीं आता है जो कि घोषित उद्योग के प्रबन्ध, अधिग्रहण और विकास के नियंत्रण के सम्बन्ध में है तथा आक्षेपकृत विधान और आई० डी० आर० अधिनियम के बीच कोई विरोध नहीं है। दोनों एक साथ विद्यमान रह सकते हैं क्योंकि आई० डी० आर० अधिनियम के अधीन संघ द्वारा अर्जित शक्ति का प्रयोग अनुसूचित उपक्रमों के अर्जन के पश्चात् भी उतने ही प्रभावपूर्ण ढंग से किया जा सकता है जितना कि अर्जन के पूर्व किया जा सकता था। अत: इस दलील का खण्डन किया जाना होगा कि राज्य विधानमण्डल आक्षेपकृत विधान अधिनियमित करने के लिए विधायी रूप से सक्षम नहीं था।

27. यह हल्का सा निवेदन किया गया था कि संघ के औद्योगिक नीति संकल्प को ध्यान में रखते हुए किसी उद्योग का राष्ट्रीयकरण राष्ट्रीय नीति के रूप में संघ द्वारा अवधारित और प्रवृत्त किया जाना होगा और ऐसा खण्ड-राष्ट्रीयकरण निश्चित रूप से संघ द्वारा ग्रहण किए गए नियंत्रण में अधिक्रमण करेगा। आक्षेपकृत विधान का तात्पर्य उत्तर प्रदेश में चीनी उद्योग का राष्ट्रीयकरण करने का नहीं है तथा सरकार के स्वामित्वाधीन किसी कम्पनी या निगम को एक समुचित अनुज्ञप्ति के अधीन चीनी विनिर्माण उपक्रम स्थापित करने के लिए कोई वर्जन नहीं है। अत: इस आधार पर आक्षेपकृत विधान केन्द्रीय अधिनियम के क्षेत्र में अधिक्रमण नहीं करता है।

28. निवेदन का दूसरा पक्षकथन यह था कि किसी भी दशा में आक्षेपकृत विधान अर्जन के परिणामस्वरूप अनुसूचित उपक्रमों में कुप्रबन्ध को रोकने और उनका प्रबन्ध ग्रहण करने के लिए परिकल्पित था और अधिनियमित किया गया था तथा यह आई० डी० आर० अधिनियम के जो कि एक केन्द्रीय अधिनियम है, क्षेत्र में अधिक्रमण करता है और अनुसूचित उपक्रमों को निगम में निहित करके जहां तक अर्जन निगम को अनुसूचित उपक्रमों का नियन्त्रण और प्रबन्ध ग्रहण करने में समर्थ बनाता है वहां तक आक्षेपकृत विधान शून्य और अप्रवर्तनीय है। इस निवेदन के समर्थन में आई० डी० आर० अधिनियम की धारा 20 पर जोर दिया गया था।

29. आई० डी० आर० अधिनियम की धारा 20 इस प्रकार है—

"इस अधिनियम के प्रारम्भ के पश्चात् कोई राज्य सरकार या स्थानीय प्राधिकारी, तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन जो कि ऐसी सरकार या स्थानीय प्राधिकारी को ऐसा करने के लिए प्राधिकृत

1980(4) eILR(PAT) SC 201

करती है, किसी औद्योगिक उपक्रम का प्रबन्ध या नियंत्रण ग्रहण करने के लिए सक्षम नहीं होगा।"

30. धारा 20 राज्य सरकार या स्थानीय प्राधिकारी को घोषित उद्योग में किसी औद्योगिक उपक्रम का प्रबन्ध या नियंत्रण ग्रहण करने से निषिद्ध करती है। सही अर्थान्वयन के आधार पर धारा 20 किसी राज्य सरकार या स्थानीय प्राधिकारी को तत्समय प्रवृत्त किसी ऐसी विधि के अधीन जो कि ऐसी सरकार या स्थानीय प्राधिकारी को ऐसा करने के लिए प्राधिकृत करती है किसी औद्योगिक उपक्रम का नियंत्रण या प्रबन्ध ग्रहण करने से प्रवारित करती है।

31. आक्षेपकृत विधान राज्य सरकार द्वारा किसी औद्योगिक उपक्रम का प्रबन्ध या नियंत्रण ग्रहण करने के लिए अधिनियमित नहीं किया गया था। तत्वतः और सारतः वह अनुसूचित उपक्रमों को अर्जित करने के लिए अधिनियमित किया गया था। यदि किसी घोषित उद्योग के किसी औद्योगिक उपक्रम का प्रबन्ध या नियंत्रण ग्रहण करने का प्रयास किया गया हो तो निर्विवाद रूप से धारा 20 ऐसी कार्यपालक शक्ति के प्रयोग को निषिद्ध करेगी। तथापि, यदि अनुसूचित उपक्रम के अर्जन के लिए विधिमान्य विधान के अनुसरण में अर्जित करने वाले निकाय को प्रबन्ध अन्तरित हो जाता है तो यह नहीं कहा जा सकता है कि इससे धारा 20 का उल्लंघन होगा। धारा 20 किसी ऐसी प्रवृत्त विधि के अधीन जो कि राज्य सरकार या स्थानीय प्राधिकारी को ऐसा करने के लिए प्राधिकृत करती है, किसी औद्योगिक उपक्रम का प्रबन्ध या नियंत्रण ग्रहण करने के लिए कोई कार्यपालक कार्यवाही निषिद्ध करती है। धारा 20 का निषेध कार्यपालक शक्ति के प्रयोग पर है किन्तु यदि किसी औद्योगिक उपक्रम के अर्जन के परिणामस्वरूप उस औद्योगिक उपक्रम का प्रबन्ध या नियंत्रण अर्जित करने वाले प्राधिकारी को अन्तरित हो जाता है तो धारा 20 कदापि लागू नहीं होती है। धारा 20 किसी राज्य विधान-मण्डल को सूची 2 की प्रविष्टि 24 से भिन्न किसी प्रविष्टि के अधीन विधायी शक्ति का प्रयोग करने से निषिद्ध करती है और यदि उस विधायी शक्ति के प्रयोग में अर्थात् किसी घोषित उद्योग के औद्योगिक उपक्रम को अर्जित करने की शक्ति के प्रयोग में अर्जन की प्रसंगति के तौर पर उद्योग या उपक्रम के प्रबन्ध या नियंत्रण का पारिणामिक अन्तरण होता है तो किसी विधायी शक्ति के प्रयोग के अनुसरण में ऐसा प्रबन्ध या नियंत्रण ग्रहण किया जाना धारा 20 के निषेध के भीतर नहीं आता है। अतः इस दलील में कोई सार नहीं है कि आक्षेपकृत विधान से धारा 20 का उल्लंघन होता है।

32. अब हम प्राय: किए जाने वाले इस आक्षेप पर विचार करेंगे कि विधान अनुच्छेद 31(2) के, जैसा कि वह सुसंगत समय पर था, उल्लंघन के कारण शून्य है। आक्षेपकृत विधान 27 अगस्त, 1971 को अधिनियमित किया गया था। अत: अनुच्छेद 31(2), जैसा कि वह सुसंगत तारीख को था, अवलोकित किया जा सकता है। अत: संविधान (25वां संशोधन) अधिनियम, 1971 द्वारा यथा संशोधित अनुच्छेद लागू नहीं होगा। अनुच्छेद 31(2) जैसा कि वह सुसंगत समय पर था, इस प्रकार था—

> "31(2) कोई सम्पत्ति, सार्वजनिक प्रयोजन के सिवाय, और ऐसी किसी विधि के, जो इस प्रकार अर्जित या अधिगृहीत सम्पत्ति के लिए प्रतिकर के लिए उपबन्ध करती है और या तो प्रतिकर की राशि को नियत करती है या उन सिद्धान्तों और रीति का उल्लेख करती है जिनसे प्रतिकर निर्धारित होना है और दिया जाना है, प्राधिकारी के सिवाय अनिवार्यत: अर्जित या अधिगृहीत न की जाएगी, और किसी ऐसी विधि पर किसी न्यायालय में इस आधार पर आपत्ति नहीं की जाएगी कि उस विधि द्वारा उपबन्धित प्रतिकर पर्याप्त नहीं है।"

33. संविधान (चतुर्थ संशोधन) अधिनियम, 1955 द्वारा अनुच्छेद 31(2) के किए गए संशोधन के पश्चात् भी "प्रतिकर" शब्द के रखे जाने पर बल दिया गया था और **वज्रवेलु मुदलियार बनाम स्पेशल डिप्टी कलक्टर ऑफ लैण्ड एक्वीजिशन, वेस्ट मद्रास**[1] के मामले के प्रति निर्देश किया गया था जिसमें इस न्यायालय ने यह अभिनिधारित किया था कि संशोधन (चतुर्थ संशोधन) अधिनियम, 1955 द्वारा अनुच्छेद 31(2) के संशोधन के पश्चात् भी उस में इस न्यायालय द्वारा कई विनिश्चयों में उसके न्यायिक निर्वचन अर्थात् इस निर्वचन के पश्चात् भी कि इससे स्वत्वहृत स्वामी को न्यायपूर्ण समतुल्य अभिप्रेत है, 'प्रतिकर' पद रखा गया है। इसके पश्चात् **भारत संघ बनाम मेटल कारपोरेशन ऑफ इण्डिया लिमिटेड और एक अन्य**[2] के मामले के प्रति निर्देश किया गया था जिसमें इस न्यायालय ने प्रतिकर शब्द के इस निर्वचन की पुष्टि कर दी थी कि इससे न्यायपूर्ण समतुल्य अभिप्रेत है। मामले को इस दृष्टिकोण से देखते हुए न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते हुए मैटल कारपोरेशन ऑफ इण्डिया (एक्वीजिशन) ऐक्ट, 1965 को अभिखण्डित कर दिया था कि उस अधिनियम में उपक्रमों के विभिन्न भागों का

---

[1] [1965] 1 एस० सी० आर० 614.

[2] [1967] 1 एस० सी० आर० 256.

मूल्य सुनिश्चित करने के लिए विभिन्न सिद्धान्त अधिकथित किए गए थे और चूंकि इस प्रकार अधिकथित वे सब सिद्धान्त उसमें उल्लिखित उपक्रमों के सभी भागों के लिए न्यायपूर्ण समतुल्य का उपबन्ध नहीं करते इसलिए स्पष्ट है कि उनका कुल योग भी उपक्रम का न्यायपूर्ण समतुल्य नहीं हो सकता था। यह निष्कर्ष निकालते समय आयकर अधिनियम के उपबन्धों के अनुसार निकाले गए अवलिखित मूल्य के आधार पर प्रयुक्त मशीनरी के मूल्य के निर्धारण को अपवाद स्वरूप माना गया था। **गुजरात राज्य** बनाम **शान्तिलाल मंगल दास और अन्य**[1] के मामले में इस न्यायालय की सांविधानिक न्यायपीठ के विनिश्चय को दृष्टि में रखते हुए अब इस मताभिव्यक्ति को अच्छी विधि नहीं कहा जा सकता है। उक्त मामले में न्यायालय का निर्णय देते हुए न्यायाधिपति शाह ने **मैटल कारपोरेशन वाले मामले**[2] को निम्नलिखित मताभिव्यक्ति करते हुए विनिर्दिष्ट रूप से उलट दिया था—

> "तब इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि अधिनियम की अनुसूची के पैरा 2 के खण्ड (ख) में अधिकथित ये दो सिद्धान्त कि (i) प्रतिकर अच्छी हालत में प्रयुक्त मशीनरी की दशा में लागत के समतुल्य होना होता है और (ii) अवलिखित मूल्य, जैसा कि वह आयकर अधिनियम में समझा जाता है, प्रयुक्त मशीनरी का मूल्य होना था, अर्जन की तारीख को मशीनरी के मूल्य के अवधारण के लिए विसंगत होते हैं।
>
> अतः हम निर्णय के इस भाग से सहमत होने में असमर्थ हैं। संसद् ने कम्पनी के उपक्रम के प्रतिकर के अवधारण के लिए सिद्धान्त विनिर्दिष्ट कर दिए थे। उन सिद्धान्तों का अभिव्यक्त रूप से अच्छी हालत की अप्रयुक्त मशीनरी और प्रयुक्त मशीनरी की बाबत संदेय प्रतिकर से सम्बन्ध था। वे सिद्धान्त स्पष्ट रूप से प्रतिकर के अवधारण के लिए उपवर्णित किए गए थे। वे सिद्धान्त प्रतिकर के अवधारण से विसंगत नहीं थे और प्रतिकर काल्पनिक नहीं था।"

34. इस प्रकार यह सुस्थापित प्रतीत होता है कि यदि किसी विधान में प्रतिकर के अवधारण के सिद्धान्तों का अर्थात् अवलिखित मूल्य के, जैसा कि आयकर विधि में समझा जाता है, प्रयुक्त मशीनरी के मूल्य के समतुल्य होने का उपबन्ध किया गया हो तो उस सिद्धान्त के बारे में न तो यही कहा जा सकता है कि वह प्रतिकर के अवधारण से विसंगत है और न ही इस प्रकार

---

[1] [1969] 3 उम० नि० प० 753=[1962] 3 एस० सी० आर० 341.

[2] [1967] 1 एस० सी० आर० 256.

1980(4) eILR(PAT) SC 201

अधिनिर्णीत प्रतिकर को काल्पनिक कहा जा सकता है । तथापि यह कहा गया था कि **शान्तिलाल मंगल दास वाले मामले**[1] के इस विनिश्चय को **कूपर वाले मामले**[2] में उलट दिया गया था और इसलिए स्थिति फिर से पूरी तरह से उलट गई थी और इसलिए "प्रतिकर" पद तथा प्रतिकर अवधारित करने के लिए सिद्धान्त, जैसा कि **वज्रवेलु मुदलियार वाले मामले**[3] में निर्वचन किया गया था, प्रत्यावर्तित हो गया था । इस बात का **कूपर वाले मामले**[2] में की गई प्रकट मताभिव्यक्तियों से समर्थन नहीं होता है जिसे कि नीचे उद्धृत किया जा रहा है—

> "यह दोनों ही विचारधाराएं, जिनसे अन्तिम परिणाम ही निकलता है इस दृष्टिकोण का समर्थन करती है कि प्रतिकर का निर्धारण करने के लिए विधि द्वारा विनिर्दिष्ट सिद्धान्त चुनौती की सीमा से परे है यदि यह प्रतिकर के अवधारण से सुसंगत हो और अनिवार्यत: अर्जित सम्पत्ति के लिए प्रतिकर का निर्धारण करने के लिए लागू होने वाला कोई मान्य सिद्धान्त हो और वह सिद्धान्त अर्जित किए जाने के लिए ईप्सित सम्पत्ति के वर्ग का मूल्य अवधारण करने के लिए उपयुक्त हो । पी० वज्रवेलू मुदालियार के मामले [(1965) 1 एस० सी० आर० 614], में अथवा शान्तिलाल मंगलदास के मामले [(1969) 3 एस० सी० आर० 34] में अभिव्यक्त किए गए दृष्टिकोण को लागू करने पर हमारे मतानुसार यह अधिनियम अवैध घोषित किए जाने योग्य है क्योंकि वह स्वत्वहृत बैंकों को सुसंगत सिद्धान्तों के अनुसार अवधारित प्रतिकर की व्यवस्था करने में असफल है । अधिनियम की धारा 4 प्रत्येक नामित बैंक के उपक्रम को तत्स्थानी नए बैंक में अन्तरित और उसमें विनिहित करती है । धारा 6(1) में उपक्रम का अर्जन करने के लिए प्रतिकर के संदाय के लिए उपबन्ध किया गया है और प्रतिकर द्वितीय अनुसूची में विनिर्दिष्ट सिद्धान्तों के अनुसार अवधारित किया जाएगा । तत्पश्चात् धारा 6(2) में यह उपबन्धित है कि यद्यपि अधिनियम की द्वितीय अनुसूची में विनिर्दिष्ट विभिन्न विषयों के बारे में पृथक्-पृथक् मूल्यांकन किया जाता है तथापि प्रतिकर की रकम को एकल प्रतिकर समझा जाएगा । चूंकि प्रतिकर अनिवार्यत: अर्जित सम्पत्ति का धन में समतुल्य है इसलिए प्रतिकर का निर्धारण

---

[1] [1969] 1 उम० नि० प० 753=[1969] 3 एस० सी० आर० 341.

[2] [1974] 3 उम० नि० प० 1045=[1970] 3 एस० सी० आर० 530.

[3] [1965] 1 एस० सी० आर० 614.

करने के लिए सिद्धान्त स्वत्वहृत स्वामी को अर्जित सम्पत्ति का मूल्य देना आशयित है । सम्पत्ति के मूल्यांकन के सिद्धान्त के अन्तर्गत स्वामी को उसकी सम्पत्ति की हानि के लिए प्रतिकर के रूप में संदत्त किए जाने वाले मूल्य का निर्धारण करने के लिए विभिन्न सिद्धान्तों या पद्धतियों को मान्य किया गया है : तथापि उनकी सम्पत्ति की हानि के लिए क्षतिपूर्ति के रूप में संदत्त किए जाने वाले मूल्य का निर्धारण करने में भिन्न-भिन्न वर्गों की सम्पत्ति को भिन्न पद्धतियां लागू होती हैं । एक वर्ग की सम्पत्ति के मूल्य का निर्धारण करने के लिए उपयुक्त पद्धति दूसरे वर्ग की सम्पत्ति के मूल्य का निर्धारण करने के लिए पूर्णतः अनुपयुक्त हो सकती है । यदि प्रतिकर का निर्धारण करने के लिए कोई उपयुक्त पद्धति या सिद्धान्त लागू किया जाए तब यह तथ्य कि दूसरे सिद्धान्त को लागू करने से, जो स्वयं भी उपयुक्त है, कोई भिन्न मूल्य निकलता है, तो न्यायालय को यह दलील स्वीकार करना न्यायोचित नहीं होगा कि दो उपयुक्त पद्धतियों में से स्वामी के लिए उनमें से कोई एक अधिक उदार पद्धति को विधानमण्डल द्वारा लागू किया जाना चाहिए ।"

35. तथापि यह कहा गया है कि **पूज्य श्री केशवानन्द भारती श्रीपदगलवरु बनाम केरल राज्य**[1] वाले मामले में अपने तथा न्यायाधिपति ग्रोवर की ओर से निर्णय देते हुए न्यायाधिपति शैलत ने वस्तुतः यह मत व्यक्त किया था—

"गुजरात राज्य बनाम शान्तिलाल मंगलदास और अन्य [(1969) 3 एस० सी० आर० 341] के मामले में मेटल कारपोरेशन ऑफ इण्डिया [(1967) 1 एस० सी० आर० 225] वाला विनिश्चय उलट दिया गया था और मेटल कारपोरेशन वाला विनिश्चय स्वयं ही आर० सी० कूपर [(1970) 3 एस० सी० आर० 530] वाले मामले में उलट दिया गया था ।"

36. प्रश्न यह है कि क्या **शान्तिलाल मंगलदास**[2] वाले मामले में विधि विषयक यह कथन कि प्रयुक्त मशीनरी के लिए अवलिखित मूल्य के लिए आधार पर प्रतिकर अधिनिर्णीत करने का सिद्धान्त प्रतिकर के अवधारण के लिए विधिमान्य सिद्धान्त है और क्या इस प्रकार अधिनिर्णीत प्रतिकर काल्पनिक होता है या नहीं, **कूपर वाले मामले**[3] में की गई किसी मताभिव्यक्ति द्वारा उलट दिया गया था ।

[1] [1973] 2 उम० नि० प० 159=[1973] सप्लीमेण्ट एस० सी० आर० 1.

[2] [1969] 3 उम० नि० प० 753=[1969] 3 एस० सी० आर० 341.

[3] [1974] 3 उम० नि० प० 1045=[1970] 3 एस० सी० आर० 530.

 1980(4) eILR(PAT) SC 201

37. निस्संदेह केशवानन्द भारती वाले मामले में[1] अपने तथा न्यायाधिपति मुखर्जी की ओर से निर्णय देते हुए न्यायाधिपति हेगडे ने यह बात दोहराई है कि व्यथित पक्षकार को ही न्यायालय का समाधान कराना होगा कि विधानमण्डल द्वारा अपनाए गए आधार का अर्जित सम्पत्ति के मूल्य से कोई युक्तियुक्त सम्बन्ध नहीं है या संदत्त की जाने वाली रकम मनमाने तौर पर नियत की गई है या वह ली गई सम्पत्ति का काल्पनिक समतुल्य है। न्यायाधिपति चन्द्रचूड़ (जैसे कि वे तब थे) ने संशोधित अनुच्छेद 31(2) में "रकम" पद का निर्वचन करते समय यह मताभिव्यक्ति की थी—

> "राशि का संदाय करने की बिनिर्दिष्ट बाध्यता और अनुकल्पतः राशि के अवधारण के लिए सिद्धान्त शब्द के प्रयोग से निश्चित तौर पर यह अभिप्रेत है कि संदत्त किए जाने के लिए नियत अथवा अवधारित राशि भ्रामक नहीं हो सकती। यदि सम्पत्ति का अधिकार अभी संविधान में विद्यमान है तो आप उससे सम्बद्ध व्यक्ति का उपहास नहीं कर सकते और उसके अधिकार का मजाक नहीं उड़ा सकते। आप उसे यह नहीं कह सकते 'मैं आपकी सम्पत्ति कौड़ियों के भाव ले लूंगा।

किन्तु इसके आगे ही यह कहा गया है कि "स्वामी को दिए जाने के लिए नियत की गई रकम को इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती है कि वह अपर्याप्त है। पर्याप्तता की संकल्पना का सीधे ही सम्पत्ति के बाजार मूल्य से सम्बन्ध होता है और इसलिए ऐसे मूल्य को चुनौती नहीं दी जा सकती।" किन्तु संविधान (25 वां संशोधन) अधिनियम द्वारा अनुच्छेद 31(2) के संशोधन के पश्चात् ऐसी स्थिति थी। सुसंगत समय पर जैसा यह अनुच्छेद था, तब भी विधानमण्डल को प्रतिकर अवधारित करने के लिए सिद्धान्त नियत करने की छूट प्राप्त थी और जब तक यह दर्शित न कर दिया जाए कि वह सिद्धान्त सम्पत्ति के मूल्य के अवधारण से विसंगत है या इस प्रकार विनिर्दिष्ट सिद्धान्तों के अनुसार प्रतिकर निकालने से प्रतिकर काल्पनिक बन जाता है तब तक उन सिद्धान्तों को किसी न्यायालय के समक्ष इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती थी कि उनमें पर्याप्त प्रतिकर का उपबन्ध नहीं किया गया है। इस मामले में प्रतिकर आक्षेपकृत अधिनियम की अनुसूची में निर्धारित किया गया है और विनिर्दिष्ट किया गया है। प्रतिकर पूर्णांकों में अवधारित किया गया है। वस्तुतः इस न्यायालय ने यह स्वीकार किया है कि मशीनरी के लिए

---

[1] [1973] 2 उम० नि० प० 139=[1973] 3 सप्लीमेंट एस० सी० आर० 1.

1980(4) eILR(PAT) SC 201

आयकर विधि के अनुसार परिकलित अवलिखित मूल्य के आधार पर प्रतिकर का संदाय, प्रतिकर अवधारित करने के सिद्धान्त के रूप में विसंगत नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रयुक्त मशीनरी का मूल्यांकन करने के लिए ही यह सिद्धान्त अपनाया गया है, यद्यपि विधान में प्रत्येक उपक्रम को संदेय प्रतिकर पूर्णांकों में नियत किया गया है और केवल उसी भाग को चुनौती दी गई थी।

38. तथापि यह कहा गया है कि किसी सिद्धान्त का अनुमान नहीं लगाया जा सकता है क्योंकि न केवल इतना ही कि सदन में कोई सिद्धान्त दर्शित नहीं किया गया है अपितु एक विनिर्दिष्ट प्रश्न के उत्तर में यह कहा गया था कि वह सिद्धान्त प्रकट नहीं किया जाना है। विधानमण्डल में हुई बहस से किसी प्रश्न का हल नहीं निकाला जा सकता है। इस मामले में सिद्धान्त का अनुमान लगाया जा सकता है और वह विधिमान्य प्रतीत होता है। यह विधानमण्डल की सामूहिक इच्छा दर्शित करता है। इसे अस्वीकार करना यह कहने की कोटि में आएगा कि सदस्यों के बहुमत ने सिद्धान्तों को समझे बिना ही मत दे दिया था। तथापि न्यायालय में हुई बहस से सिद्धान्त प्रतिपादित हो जाता है और यह विधिमान्य सिद्धान्त है।

39. उन कारणों की पृष्ठभूमि को देखने से जिनके परिणामस्वरूप अनुसूचित उपक्रमों का अर्जन किया गया था यह प्रकट होगा कि ये अनुसूचित उपक्रम बहुत अधिक हानियां अग्रनीत कर रहे थे, भले ही वे गन्ना उत्पादकों अर्थात् किसानों से गन्ना ले रहे थे, तथापि वे गन्ने की कीमत चुकाने में असफल रहे थे। श्रमिक अशान्त थे क्योंकि श्रमिकों को संदाय नहीं किया गया था। मोटे तौर पर उन्हें रुग्ण उपक्रम कहा जा सकता है जो कि उस क्षेत्र की अर्थ-व्यवस्था के विकास में बाधा डाल रहे थे। मशीनरी के नवीकरण के लिए लाभों को लगाने की कोई गुंजाइश नहीं थी क्योंकि कोई लाभ हो ही नहीं रहा था। आई० डी० आर० अधिनियम के अधीन कुछ उपक्रमों का प्रबन्ध ग्रहण कर लेने के बावजूद भी स्थिति में सुधार नहीं हुआ था और इसलिए यह निराशाजनक स्थिति लोक हित में कड़े उपचार की अपेक्षा करती थी तथा अर्जन का यह कड़ा उपचार लागू करते समय वे सिद्धान्त अपनाए गए थे जो कि मशीनरी के मूल्य के अवधारण के लिए विधिमान्य थे। उस सिद्धान्त को लागू करके किए गए परिकलन के आधार पर प्रतिकर की पर्याप्तता या अपर्याप्तता न्यायिक पुनर्विलोकन से परे है। ऐसे सिद्धान्त को विसंगत कहना या प्रतिकर को काल्पनिक कहना दिवाभ्रान्ति ही होगी। तदनुसार अनुच्छेद 31 (2) के अधिक्रमण के आधार पर आक्षेपकृत विधान की विधिमान्यता को दी गई चुनौती असफल होगी।

40. दो छोटे-छोटे और प्रासंगिक प्रश्न शेष रह जाते हैं जिनका सरसरी तौर पर उल्लेख किया गया है। उन निवेदनों पर भी कोई जोर नहीं दिया गया है। वे ये हैं कि (1) राज्य द्वारा ली गई कृषि भूमि के लिए किसी प्रतिकर का उपबन्ध नहीं किया गया है; (2) अनुसूचित उपक्रमों की गुडविल का प्रतिकर के घटक के रूप में मूल्यांकन नहीं किया गया था।

41. ईश्वरी खेतान शुगर मिल्स प्राइवेट लिमिटेड के सम्बन्ध में यह कहा गया था कि अनुसूचित उपक्रम पर स्वामित्व रखने वाली कम्पनी की 36 एकड़ कृषि भूमि प्रतिकर के बिना ले ली गई थी। इसका विरोध यह कहकर किया गया था कि वह कृषि भूमि नहीं ली गई है। अभिवचनों तथा अभिलेख से यह स्पष्ट नहीं है कि क्या अनुसूचित उपक्रम की संरचना से बाहर कोई कृषि भूमि अर्जित की गई है और वस्तुतः वह निगम द्वारा ग्रहण कर ली गई है। हो सकता है कि अनुसूचित उपक्रमों की विभिन्न संरचनाओं के बीच कोई खुली भूमि हो किन्तु वह अनुसूचित उपक्रमों का अभिन्न भाग हो क्योंकि कोई अन्य अर्थान्वयन यह दर्शित करेगा कि दो संरचनाओं के बीच में रास्ते या सड़क को अर्जित नहीं किया जा सकता था। अतः जब तक विनिर्दिष्ट रूप से यह दर्शित न कर दिया जाए कि अनुसूचित उपक्रमों को अर्जित करते समय अनुसूचित उपक्रम की कम्पनी या स्वामी की कृषि भूमि अर्जित कर ली गई थी या अर्जन के भाग के रूप में ग्रहण कर ली गई थी तब तक यह निवेदन स्वीकार करना सम्भव नहीं है कि कृषि भूमि के लिए प्रतिकर का उपबन्ध किए बिना कृषि भूमि का अर्जन किया गया था।

42. जहां तक गुडविल का प्रश्न है, जितना कम कहा जाए उतना ही बेहतर है। अनुसूचित उपक्रम रुग्ण एकक थे और उनकी रुग्णता पुरानी थी। ऐसा विनिर्माण-एकक जिसकी बहुत अधिक अग्रनीत हानियां थीं और जो संदायों में व्यतिक्रम कर रहा था और सम्भवतः कर की बकायों की वसूली के लिए उसमें रिसीवरों की नियुक्ति की जाने वाली थी, अपने द्वारा कमाई गई गुडविल के लिए प्रतिकर मांग रहा है। यह गुडविल वास्तविक के बजाय काल्पनिक अधिक प्रतीत होती है या एक अमान्य निवेदन के समर्थन में पेश किया गया तर्क प्रतीत होती है। किन्तु इसका सही उत्तर यह है कि किसी विनिर्माण उपक्रम की कोई गुडविल नहीं हो सकती है अपितु गुडविल अनुसूचित उपक्रम पर स्वामित्व रखने वाली किसी कम्पनी, भागीदारी या किसी स्वामी की ही हो सकती है तथा न तो कम्पनी, न भागीदारी और न ही किसी स्वामित्व-एकक को, यदि कोई हो, आक्षेपकृत विधान के अधीन अर्जित किया गया है। अतः अनुसूचित उपक्रमों के प्रतिकर का मूल्यांकन करते समय गुडविल के मूल्यांकन का कोई प्रश्न उत्पन्न नहीं होता है।

1980(4) eILR(PAT) SC 201

43. 1979 के विशेष इजाजत पिटीशन 6252 में उपसंजात होने वाले श्री आर० ए० गुप्त ने यह अतिरिक्त दलील दी है कि आक्षेपकृत अधिनियम से अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण होता है क्योंकि पिटीशनरों के अनुसूचित उपक्रमों का अर्जन के लिए चयन पूर्णतया मनमाना है और अर्जन के लिए चुने गए उपक्रमों और अर्जन से छोड़ दिए गए उपक्रमों के बीच कोई विभेद नहीं है क्योंकि उत्तर प्रदेश राज्य में ऐसे सभी चीनी उपक्रम एक जैसी ही स्थिति और परिस्थिति में थे। न्यायाधिपति भार्गव की चीनी उद्योग जांच आयोग, 1954 नामक रिपोर्ट से समर्थन प्राप्त करने का प्रयास किया गया था जिसमें अन्य बातों के साथ उत्तर प्रदेश में 17 चीनी उपक्रम ऐसे उपक्रमों के रूप में विनिर्दिष्ट किए गए थे जो प्रथमदृष्टया रुग्ण चीनी मिलें थीं। रिपोर्ट के एक भाग को पढ़ने के पश्चात् यह कहा गया था कि 12 चीनी उपक्रमों को अर्जन के लिए वर्गीकृत करना अर्जन के समूह में सम्मिलित किए गए उपक्रमों और उस समूह से छोड़े गए उपक्रमों के बीच किसी बोधगम्य विभेद पर आधारित नहीं है और इस विभेदजनक व्यवहार का आक्षेपकृत विधान द्वारा प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य से कोई तर्कसंगत सम्बन्ध नहीं है। प्रत्यर्थियों की ओर से उत्तर प्रदेश राज्य के विद्वान महाधिवक्ता ने यह कहकर इस दलील का खण्डन किया कि अनुसूचित उपक्रमों को अर्जित करने के पूर्व सरकार ने शपथपत्र में दी गई विनिर्दिष्ट कालावधि के लिए चीनी उपक्रमों की स्थिति का बारीकी से पुनर्विलोकन किया था और यह अभिनिश्चित किया था कि क्या गन्ने की कीमत, क्रय कर, श्रमिकों के देयों आदि के संदाय में निरन्तर व्यतिक्रम के कारण स्थिति निराशाजनक बन गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि उत्तर प्रदेश की स्थिति विशेष प्रकार की है क्योंकि गन्ना उत्पादक अपना गन्ना चीनी उपक्रमों को बेचते ही जाते हैं सम्भवतः इसलिए कि उनके पास इस निमित्त और कोई विकल्प नहीं है क्योंकि यह एक विनश्वर वस्तु है और इसे यथा शीघ्र व्ययनित किया जाना होता है और उन्हें संदाय के लिए चीनी के बड़े व्यापारियों की इच्छा और मनमर्जी पर ही निर्भर करना पड़ता है। निर्धन किसानों पर इसका बुरा असर असहनीय होगा क्योंकि नकद फसल से उन्हें कोई नकद रकम नहीं मिलेगी और इसका अपरिहार्य परिणाम उनका विनाश होगा तथा यही स्थिति वर्ष-दर-वर्ष चलती आ रही थी। यह कहा गया था कि इस निरन्तर व्यतिक्रम की बारीकी से संवीक्षा की गई थी और जहां पर कुछ चीनी उपक्रमों की बाबत स्थिति निराशाजनक थी वहां उन्हें एक साथ वर्गीकृत किया गया था और उन्हें अर्जित किया जाना था। क्या यह कहा जा सकता है कि ऐसा वर्गीकरण किसी बोधगम्य विभेद पर आधारित नहीं है।

हो सकता है कि किसी औद्योगिक उपक्रम की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी, अच्छी और औसत, खराब, असहनीय और बृहत्तर राष्ट्रीय दृष्टिकोण से अलाभप्रद हो। सरकार के लिए सभी चीनी उपक्रमों को ऐसे उपक्रमों के साथ एक ही समूह में रखना कठिन होता जिन्हें कि किसी तरह से जीवित रखा जा रहा था। ऐसा बोधगम्य विभेद स्पष्ट प्रकट होता है जिसके द्वारा असहनीय स्थिति में के उपक्रमों को एक साथ एक ही समूह में वर्गीकृत किया गया है। अर्जन उन उपक्रमों को पुनरुज्जीवित करने के स्पष्ट उद्देश्य के लिए और गन्ना उत्पादकों तथा श्रमिकों के, जिनके कष्टों का कोई अन्त नहीं था, संदाय को प्राथमिकता देकर उस क्षेत्र की अर्थव्यवस्था को सुधारने के लिए था। इस प्रकार निस्संदेह इस विभेद का अधिनियम द्वारा प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य से तर्कसंगत सम्बन्ध है। अनुच्छेद 14 के आधार पर दी गई चुनौती निराशा में दिया गया तर्क ही था और उसका खण्डन किया जाना होगा।

44. इन अपीलों तथा विशेष इजाजत पिटीशनों में ये ही दलीलें दी गई हैं और इनमें से किसी में भी कोई सार नहीं है, इसलिए अपीलें तथा विशेष इजाजत पिटीशन असफल होते हैं और एक सुनवाई की फीस के खर्चों सहित खारिज किए जाते हैं।

न्यायाधिपति पाठक—

45. हमें अपने बंधु न्यायाधिपति देसाई द्वारा तैयार किए गए निर्णय को पढ़ने का अवसर मिला है। जब कि हम उन मुद्दों में से जिन पर हमारे समक्ष बहस की गई थी अनेक मुद्दों के बारे में उनके द्वारा निकाले गए अन्तिम निष्कर्षों से मोटे रूप से सहमत हैं, तथापि हम इस प्रश्न के बारे में अपनी कोई राय अभिव्यक्त न करना ठीक समझेंगे कि क्या उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1957 की धारा 2 में अधिनियम की प्रथम अनुसूची में विनिर्दिष्ट उद्योगों की बाबत संसद् द्वारा की गई घोषणा के बारे में यह माना जा सकता है कि वह संविधान की सप्तम अनुसूची की सूची 2 की प्रविष्टि 24 के विस्तार से विधायी क्षेत्र का केवल उतना क्षेत्र ही हटाने तक परिसीमित है जितना कि अधिनियम की विषयवस्तु और विस्तार के अन्तर्गत आता है या क्या उसके बारे में यह माना जा सकता है कि वह उस प्रविष्टि से घोषणा में विनिर्दिष्ट उद्योगों के सम्बन्ध में सभी विषयों की बाबत सम्पूर्ण विधायी क्षेत्र के ही हटाए जाने को प्रभावित करती है। हमें ऐसा प्रतीत होता है

कि हिंगिर-रामपुर कोल कम्पनी लिमिटेड और अन्य बनाम उड़ीसा राज्य और अन्य[1], उड़ीसा राज्य बनाम एम० ए० तुल्लोक एण्ड कम्पनी[2], बैजनाथ केडिया बनाम बिहार राज्य और अन्य[3] और हरियाणा राज्य और एक अन्य बनाम चानन मल[4] आदि के मामलों में इस न्यायालय द्वारा की गई मताभि-व्यक्तियों से इस बारे में कोई सहायता नहीं मिल सकती है। उनमें से प्रत्येक मामले में संसद् द्वारा सम्बद्ध अधिनियमिति में की गई घोषणा खानों के विनियमन और खनिजों के विकास के नियंत्रण को अधिनियमिति में उपबन्धित विस्तार तक ही परिसीमित करती थी। यह बात कि क्या जिन शब्दों में उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम की धारा 2 में घोषणा की गई है (एक ऐसी घोषणा जो कि अधिनियम द्वारा उपबन्धित विस्तार तक विनिर्दिष्ट उद्योगों के नियंत्रण को अभिव्यक्त रूप से परिसीमित नहीं करती है), उनका अर्थान्वयन इस रूप में किया जा सकता है कि वे इस प्रकार सीमित हैं, एक ऐसा विषय है जिसके बारे में, हमारे विचार में, अधिक समुचित मामले में विचारविमर्श किया जाना चाहिए। हमारे विचार में उस प्रश्न की जांच के क्षेत्र में, जिस पर कि विचार किया जा सकता है, इस मामले में ऐसा विचारविमर्श पर्याप्त रूप से नहीं आता है और इसके लिए अच्छा कारण भी है। इस मामले में इस प्रश्न को उत्पन्न करने वाले विवाद्यक परिसीमित थे। इन मामलों में राज्य विधानमण्डल की यू० पी० शुगर अण्डरटेकिंग्ज (एक्वीजिशन) ऐक्ट, 1971 अधिनियमित करने की विधायी क्षमता का इस आधार पर पर्याप्त रूप से निपटारा किया जा सकता है कि विधान सूची 3 की प्रविष्टि 42 के अन्तर्गत आता है और इसे सूची 1 की प्रविष्टि 52 या सूची 2 की प्रविष्टि 24 से सम्बद्ध नहीं किया जा सकता है। जब आक्षेपकृत अधिनियमित वस्तुतः सूची 3 की प्रविष्टि 42—"सम्पत्ति का अर्जन और अधिग्रहण"—के अन्तर्गत आती है तब हम सूची 1 की प्रविष्टि 52 और सूची 2 की प्रविष्टि 24 के, जो प्रविष्टियां एक पूर्णतया भिन्न विषयवस्तु अर्थात् "उद्योग" के सम्बन्ध में है, परस्पर विरोधी दावों की जांच नहीं करना चाहते हैं।

---

[1] [1961] 2 एस० सी० आर० 537.

[2] [1964] 4 एस० सी० आर० 461.

[3] [1970] 3 उम० नि० प० 142=[1970] 2 एस० सी० आर० 100.

[4] [1977] 1 उम० नि० प० 965=[1976] 3 एस० सी० आर० 688.

1980(4) eILR(PAT) SC 201

46. इस बारे में अपना कोई मत न व्यक्त करते हुए हमें संविवाद के शेष प्रश्नों पर अपने विद्वान बंधु द्वारा निकाले गए अन्तिम निष्कर्षों से सहमत होने में, और इन अपीलों और विशेष इजाजत पिटीशनों का निपटारा करते हुए उनके द्वारा प्रस्थापित आदेश से सम्मति प्रकट करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है।

अपीलें और विशेष इजाजत पिटीशन खारिज किए गए।

ज०

———